जैनधर्म की कहानियाँ

भाग - २१

प्रकाशक

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन - खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन - सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का २९वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग - २१)

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (छत्तीसगढ़)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४२५० (सौराष्ट्र)

द्वितीय संस्करण - ११०० प्रतियाँ कुल : ३३०० प्रतियाँ

पंचकल्याणक महोत्सव, ढ़ाई द्वीप इन्दौर के अवसर पर

(२० से २६ जनवरी, २०२३)

न्यौछावर : 15 रुपये मात्र

अनुक्रमणिका

दृष्टिकोण बदलना ही सच्चा	९
चर्मचक्षु और ज्ञानचक्षु	१०
उपसर्ग केवली १००८ श्री गुरुदत्त भगवान	११
सिद्धक्षेत्र द्रोणागिरि	३०
दिव्य तो आत्मा है	३२
मचा मोहल्लों में हल्ला...	३४
फल तो मिलता ही है	४१
कोयल, कौआ और लोमड़ी	४३
किस्मत का चमत्कार	४७
विद्युच्चर चोर	४९
अपराध-बोध	५१
उस समय तेरा कौन ?	५६
देशभूषण और कुलभूषण (ज्ञान में ही त्याग)	५८
अब समझले तो अच्छा !	६०
सम्यक्त्व लीला नाटक	६२

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता,
लामरोड, देवलाली,
नासिक-४२२ ४०१

३. **तीर्थधाम मंगलायतन,**
पो.- सासनी-२०४ २१६
जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,**
आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र
४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –

जैन कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302 015
मोबाइल : 8619975965, 9414717816
e-mail :
jaincomputers74@gmail.com

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया — ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २७ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ३८ पुष्पों में लगभग ७ लाख २५ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में पुण्य-पाप के उदयानुसार अनेक उतार-चढ़ाव के बीच जिन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया - ऐसे राजा वरांग की विजय गाथा को बतानेवाली प्रेरक कथा को प्रकाशित किया जा रहा है। इसका अनुवाद प्रशम जीतू भाई मोदी सोनगढ़ ने एवं सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम दोनों महानुभावों के आभारी हैं।

आशा है इसका स्वाध्याय कर पाठक गण, मंचन कर कलाकार गण तथा देखकर दर्शक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 एवं आई डी बी आई खाता क्रमांक 526100100004648 IFSC-IBKL0000526 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म	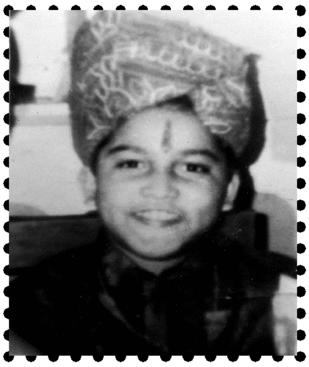	**स्वर्गवास**
१/१२/१९७८ (खैरागढ़, म.प्र.)		२/२/१९९३ (दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे - ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

हमारे मार्गदर्शक

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव
पिता - स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया
पिता - स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् १९९३ में आप लोगों ने ८० साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष – आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार

पुत्र	पुत्रवधु	पुत्री	दामाद
ललित	लीला	चन्द्रकला	गौतमचंद बोथरा,
स्व. निर्मल	प्रभा		भिलाई
अनिल	मंजु	शशिकला	अरुणकुमार पालावत,
सुनील	सुधा		जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खारड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता अमित कुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़

परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर

स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
वर्षाबेन निरंजन भाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहा बेन जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मी बेन शशांक भाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा

दृष्टिकोण बदलना ही सच्चा उपाय

अनिष्ट प्रतिभासित होने वाली अवस्था को इष्टरूप में परिवर्तित करने का विचार आपत्ति का सही प्रतिकार नहीं है, अपितु अपना दृष्टिकोण बदलना ही सच्चा उपाय है।

पुण्यफल-प्राप्ति की सार्थकता कब है?

विषयानुराग किसी भी इन्द्रिय का क्यों न हो, उसका भोग वर्तमान काल में पाप एवं दु:खरूप ही है और भविष्यकाल के दु:ख का कारण है। इसलिए पुण्योदय के काल में विषयों से विरक्त रहकर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के आश्रय से जीवन को धर्ममय बनाना चाहिए। यही मनुष्यभव एवं पुण्यफल-प्राप्ति की सार्थकता है।

– क्षत्रचूड़ामणि, पहला लम्ब, श्लोक : ९, पृष्ठ : ४१

संकट के समय हम करते क्या हैं और करना क्या चाहिए ?

संकट के समय प्राय: अज्ञानी मनुष्य शोक करने लगते हैं, जो व्यर्थ है; क्योंकि शोक करना संकट से मुक्ति का उपाय नहीं है। शोक तो स्वयं दु:खरूप है। शोक धैर्य प्रदान नहीं करता; अपितु मनोबल को गिराता है। शोक तो वर्तमान में दु:ख दाता है ही और भविष्य में भी असातारूप कर्म बन्ध के फलस्वरूप दु:ख ही देता है। वास्तव में देखा जाए तो अपने आत्मस्वरूप का विस्मरण ही संकट एवं विपत्तियों का मूलकारण है। अत: आत्मस्वरूप का स्मरण करना चाहिए।

– क्षत्रचूड़ामणि, पहला लम्ब, श्लोक ३०, पृष्ठ ५९

परीषहों को सहन करना आवश्यक क्यों हैं ?

अदु:खभावितं ज्ञानं क्षीयते दु:ख सन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दु:खैरात्मानं भावयेन्मुनि: ।।

सुख पूर्वक प्राप्त किया ज्ञान दुख आने पर विस्मृत हो जाता है, इसलिए परीषहों के सहन का अभ्यास आवश्यक है। परीषह सहन का अभ्यास नहीं हो तो विपत्ति आने पर मोक्षमार्ग से च्युत हो जाता है।

चर्मचक्षु और ज्ञानचक्षु

शिक्षा प्राप्त करने आये राजा के दोनों पुत्रों से गुरुजी ने समान प्रश्न पूछा –

आप लोगों को दुनियाँ में आये बीस-बाईस वर्ष हो गये, इस दौरान तुम लोगों ने दुनियाँ की गति देखी ही होगी। मेरा सवाल है कि 'तुम्हें यह दुनियाँ कैसी लगी ?'

राजा का बड़ा पुत्र विकेन्द्र बोला –

'गुरुजी यह दुनियाँ भी कोई दुनियाँ है, यहाँ – जहाँ देखो मार-काट, झूठ, अत्याचार बेईमानी का ही बोलबाला है। सज्जनता ढूंढे नहीं मिलती, किसी को किसी दूसरे की परवाह नहीं, सब स्वार्थी व लालची हैं, धर्म-ज्ञान तो जैसे रह ही नहीं गया और आप पूछते हैं कि यह दुनियाँ कैसी है, इससे बदतर स्थिति भी कभी हुई है ?'

गुरुजी ने यही प्रश्न सत्येन्द्र से पूछा तो उसने जवाब दिया –

'गुरुदेव ! सभी वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव से प्रकाशमान हैं, किसी को किसी से लेना-देना नहीं । आत्मा ज्ञानस्वभावी जीवतत्त्व है, उसमें अहंकार का नामोनिशान नहीं, उसने कभी अज्ञानता देखी ही नहीं, झूठ उसके स्वभाव में नहीं, संसार का प्रत्येक प्राणी स्वभाव से पूर्ण परमात्मा है, यदि वह पुरुषार्थ करे तो पर्याय में भी प्रकट परमात्मा बन सकता है ।'

गुरुजी ने कहा –

'चर्मचक्षु और ज्ञानचक्षु में यही अन्तर है। सत्येन्द्र ज्ञानचक्षु से देख रहा है। वस्तु के स्वभाव से उसे पहचानना ही उसकी इज्जत करना है। उसमें अपनी नजर से अच्छाई या बुराई देखना, उस वस्तुस्वभाव के साथ अन्याय है।'

– महेन्द्र जैन 'मुकुर'

उपसर्ग केवली
१००८ श्री गुरुदत्त भगवान
(भवावलि, उपसर्ग एवं निर्वाण)

सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, ब्रह्मचर्याणुव्रत के धारी, दयालु राजा श्रेणिक ने ब्रह्मचर्यव्रत की कथा जानने के पश्चात् अपरिग्रह व्रत की कथा जानने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने गौतमस्वामी से पूछा –

हे प्रभो! अपरिग्रह किसे कहते है? इस व्रत का पालन न करना क्यों पाप का कारण है? इस व्रत के पालन करने से आत्मा पवित्र कैसे होती है?

गौतमस्वामी – राजन्! किसी भी वस्तु से मूर्छा रखना परिग्रह है, इस मूर्छा का त्याग करना अपरिग्रह है। धन, धान्य, राज, वैभव, स्त्री, पुत्र आदि सभी पदार्थ परिग्रह हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद भी परिग्रह हैं। जो व्यक्ति इस परिग्रह का त्याग करता है, वही अपरिग्रह व्रत को पालता है।

ममत्वबुद्धि को परिग्रह इसलिये माना गया है कि बाह्य परिग्रह के न रहने पर भी, बाह्य परिग्रह के प्रति व्यक्ति ममत्व कर लेता है। अत: मूर्छा ही वस्तुत: परिग्रह है, जो इसका त्यागी है वही अपरिग्रही है। श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार धन, धान्य, गाय, घोड़े, महल, मकान आदि का परिमाण करता है तथा लोभ कषाय को घटाने के लिये मूर्छा को भी धीरे-धीरे घटाता है। समस्त पापों की जड़ यह परिग्रह है। इसलिये इसे सर्वदोषानुषंग कहा गया है।

अपने और दूसरे के जीवन को सुखी बनाने के लिये अपरिग्रह व्रत का पालन आवश्यक है। इसके पालने से ही संसार में शान्ति स्थापित की जा सकती है।

इस अपरिग्रह व्रत को धारण कर राजा अनुपरिचर की चारों रानियाँ तो स्वर्ग गईं तथा परिग्रह के प्रति मूर्च्छा भाव होने से, बाह्य में परिग्रह न होने पर भी अनुपरिचर राजा तालाब में संक्लेश परिणामों से मरकर अजगर हुए, पश्चात् विमल नामक भवनवासी देव हुए, तत्पश्चात् कथानायक गुरुदत्त हुए।

यह उन्हीं की कथा है इसे ध्यान से पढ़कर सभी हिताहित का विचार कर जिसमें अपना हित हो, वह करना।

पूर्वभव –

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरूजांगल नाम का देश है, इसमें अवन्ति नाम की नगरी है। इस नगरी का **राजा अनुपरिचर** था। इसकी पद्मावती, प्रभावती, सुप्रभा, कनकप्रभा नाम की चार पटरानियाँ थीं। इनमें पटरानी पद्मावती का अग्र स्थान था, इसके पुत्र का नाम अनन्तवीर्य था। अन्य रानियों से भी पुत्र उत्पन्न हुए थे। यह राजा अत्यन्त प्रभावशाली था, राजा अनुपरिचर के अधीनस्थ कई माण्डलिक राजा थे।

एक दिन वनमाली ने आकर बसन्त ऋतु के आगमन की सूचना दी। राजा ने बसन्त आगमन जानकर वनविहार करने का विचार किया और तदनुसार उसने प्रयाण वाद्य बजवाया, जिसे सुनकर सभी शूरवीर और सामन्त चल पड़े। राजकुमार और रानियाँ भी मदोन्मत्त हाथियों पर सवार होकर चल पड़ीं। सेना आगे-आगे अनेक अस्त्रों से सुसज्जित हो चलने लगी।

वन के सौन्दर्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और लता निकुंजों में जाकर उसने विश्राम किया। पश्चात् रत्न और मणियों से निर्मित घाटों और सोपानों वाले रंग-बिरंगे जल से युक्त तालाब में जलक्रीड़ा के लिये राजा ने रानियों सहित प्रवेश किया। तालाब का जल कुमकुम, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि से सुगन्धित किया गया था। उसके घाटों पर मणियों के चौक पूरे गये थे, सोपानों पर सुगन्धित पुष्प बिछाये गये थे। राजा अपनी पट्टमहिषियों के साथ जलक्रीड़ा में मग्न था।

इसी बीच विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी की अलकापुरी का निवासी वज्रदाढ़ नाम का विद्याधर अपनी स्त्री मदनवेगा के साथ आकाश मार्ग से आ रहा था। मदनवेगा की दृष्टि जब तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए अनुपरिचर राजा पर पड़ी तो वह कहने लगी –

हम लोग पक्षी के समान सदा आकाश में घूमते रहते हैं। देखिये! यह राजा कितना सुखी है, अपने समस्त परिवार के साथ आनन्द पूर्वक जल विहार कर रहा है। हम लोग केवल नाम के विद्याधर हैं पर वास्तव में हमारे जीवन में सुख तनिक भी नहीं है। हम से अधिक सुखी तो यह राजा है, इसने किस प्रकार का सुन्दर तालाब बनवाया है, इस तालाब का जल भी कितना सुगन्धित और स्वच्छ है। वास्तव में यह धन्य है, मनुष्य जीवन के लौकिक सुखों को यह भोग रहा है।

वज्रदाढ़ को अनुपरिचर राजा की यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी, अत: वह अपनी स्त्री को अपने महल अलकापुरी में छोड़कर वापिस पुन: वहाँ पर आया और एक बड़ी-सी शिला लेकर उस तालाब को ढ़क दिया। राजा और रानियाँ उसी तालाब के भीतर रह गये। यद्यपि उन्होंने बाहर निकलने का पूरा प्रयत्न किया, पर वे अपने प्रयत्न में सफल न हो सके।

रानियों ने राजा से कहा – देव ! अब दुःख करने से कुछ नहीं होगा, पूर्वजन्म कृत कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। अशुभोदय किसी को नहीं छोड़ता, अब शान्तिपूर्वक आती हुई विपत्ति को सहना चाहिये। घबड़ाने या विलाप करने से शान्ति अथवा छुटकारा तो मिलने वाला है नहीं, उल्टा पापबंध होने से दुर्गति ही होगी। स्त्री, पुत्र, धन, दौलत सब वस्तुएँ यहीं रहने वाली हैं, इनसे मोह करना व्यर्थ है। पाप के उदय में कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता है, चिन्ता, दुख और ग्लानि करने से कुछ भी हाथ नहीं आता। इसे भोगना पड़ता है। अब मृत्यु से यहाँ कोई नहीं बचा सकता है, अतः भगवान जिनेन्द्र के चरणों का ध्यान कीजिये। वीर वही है, जो मृत्यु का वीरता पूर्वक आलिंगन करे और तनिक भी विचलित न हो।

देव ! अब परिग्रह का मोह छोड़कर, संन्यास मरण धारण करना चाहिये। यह संन्यास मरण ही आत्मा का सच्चा कल्याण करने वाला है, इसी के द्वारा मनुष्य अपना सच्चा उपकार कर सकता है। मरते समय जो व्यक्ति मोह करता है, वह अपना बड़ा भारी अहित कर लेता है अतएव अब धन, धान्य, वैभव आदि का त्याग कर आत्म कल्याण में लगना चाहिये। महाराज ! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के समान अपनी गति को बिगाड़िये मत। परिग्रह का मोह बड़ा ही अहितकर होता है, आचार्यों ने परिग्रह के मोह को समस्त पाप की खान माना है। कोई जीव परिग्रह का त्याग किये बिना अपना सच्चा हित साधन नहीं कर सकता।

इसप्रकार रानियों के समझाये जाने पर भी मोही राजा ने धन, धान्य, वैभव, राज्य, परिवार आदि में आसक्त चित्त होकर मरण प्राप्त किया। अनेक तरह से समझाये जाने पर भी राजा का मोह नहीं छूटा, आर्तध्यान में लीन रहा। स्त्री पुत्रों का नाम ले लेकर विलाप करते

हुए उसने मृत्यु प्राप्त की, जिससे वह उसी उद्यान में **अजगर सर्प** हुआ।

रानियों ने समस्त परिग्रह त्याग कर संन्यास मरण धारण किया, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु प्राप्त कर आनन्द, कान्त, सुकान्त और अमितकान्त नाम की देव पर्याय को प्राप्त हुईं।

जब राजकुमारों और सामन्तों को रानियों सहित अनुपरिचर महाराज की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ तो वे सभी दुःख में संलग्न हो गये। तालाब पर रखे गये पत्थर को देखकर वे कहने लगे कि यह कार्य किसी व्यन्तर या विद्याधर का है, जिसने पूर्वजन्म के बैर के कारण ही ऐसा किया है। राजा और रानियों के गुणों का स्मरण कर सभी लोग विलाप करने लगे और नाना प्रकार से दुःख प्रकट करते हुए चिन्तित हुए।

राजा के पुत्र अनन्तवीर्य ने सभी को समझाया और कर्म की विचित्रता का स्वरूप बतलाते हुए धैर्य प्रदान किया। शुभ मुहूर्त में अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया गया और सारे कार्य पूर्ववत् चलने लगे। एक दिन इसी नगर में सारस्वत नाम के अवधिज्ञानी आचार्य का संघ सहित पर्दापण हुआ। वे अवन्ति नगर के उद्यान में एक पाषाण शिला पर आसीन होकर तपस्या करने लगे।

मुनिसंघ का समाचार पाकर राजा अनन्तवीर्य पुरजन और परिजन सहित मुनिराज की वन्दना के लिये गया और निकट पहुँच कर तीन प्रदक्षिणा दीं एवं अष्ट द्रव्यों से पूजा की। पश्चात् सामन्तों सहित मुनिराज का उपदेश सुनने लगा। धर्मोपदेश श्रवण करने के अनन्तर उसने हाथ जोड़कर मुनिराज से पूछा–

हे प्रभो मेरे माता-पिता का मरण कैसे हुआ ? उनके ऊपर वृहद्‌शिला किसने रखी?

अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातों को ज्ञात कर मुनिराज ने सारी कथा कही। यह सुनकर अनंतवीर्य ने आगे पूछा कि अब कृपाकर यह और बतलाने का कृपा करें कि उनकी कैसी गति हुई है?

मुनिराज ने कहा कि तुम्हारी माताओं ने समस्त वस्तुओं से ममत्व छोड़ संन्यास मरण धारण किया था, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में देव हुई हैं। तुम्हारे पिता अनुपरिचर को अन्त समय में सभी वस्तुओं का मोह लगा रहा, जिससे वह उसी वाटिका में अजगर सर्प की पर्याय को प्राप्त हुए हैं।

अनन्तवीर्य माताओं की सद्गति और पिता की कुगति ज्ञातकर आश्चर्य में डूब गया। उसने विचारा कि यह जीव अपने परिणामों के अनुसार ही सद्गति या दुर्गति को प्राप्त करता है। अत: वह मुनिराज से हाथ जोड़कर कहने लगा– प्रभो ! आप थोड़ा कष्ट कर मेरे पिता को ऐसा उपदेश दें, जिससे वह इस तिर्यंचगति को छोड़ अपना आत्मकाल्याण कर सकें।

मुनिराज– वत्स ! तुम्हारा विचार उत्तम है, अभी उपदेश देने से आपके पिता के जीव अजगर सर्प को जातिस्मरण होने का सुकाल है तथा जातिस्मरण होते ही स्वर्ग से रानियों के जीव भी वहाँ आ जायेंगे और उन्हें सम्यक् उपदेश देंगे, जिससे वह परिग्रह से होने वाली हानियों को समझ जायेंगे और संसार से ममत्व छोड़ अपना आत्म कल्याण करेंगे। हमारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे ही समझाने से उनका कल्याण होगा। **जैनधर्म ऐसा अमृत है कि इसका कोई किसी भी अवस्था में सेवन करे तो लाभ ही लाभ है। यह धर्म सभी जीवों का कल्याण करने वाला है।**

मुनिराज को नमस्कार कर अनन्तवीर्य अपने पिता के जीव अजगर के पास आया और उसे नमस्कार कर कहने लगा– स्त्री होकर

आपकी रानियों ने परिग्रह छोड़ने से देव पद को प्राप्त किया है। सांसारिक पदार्थों की वांछा तथा परिग्रह की लालसा बड़ी हानिकारक है। आपने पुरुष पर्याय प्राप्त कर शूरवीरता के अनेक कार्य किये, किन्तु मरण समय धन-धान्य से मोह लगा रहा, जिससे आपको यह नीच पर्याय प्राप्त हुई। **धर्म प्राप्त करने का अवसर पाकर भी जो व्यक्ति अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह में लीन रहेगा, वह निश्चय ही अपनी गति को बिगाड़ लेगा।** आप वैभवशाली राजा थे, बड़े-बड़े शूरवीर और सामन्त आपका सम्मान करते थे, क्या आपको, अपनी यह दशा खटकती नहीं है?

हे देव ! यह मोह अपने को आर्त-रौद्र में रखता हुआ निश्चय ही कुगति को प्राप्त कराता है। कहाँ आप पहले दिव्य अंगनाओं के बीच शोभित होते थे, कहाँ अब आप इन मोह भावों के कारण हलाहल को लिये घूम रहे हैं।

श्रेष्ठ चावल, दूध, घृत, मिश्री आदि भक्षण करने वाले आप, अब मेंढ़क भक्षण कर अपना उदर पोषण कर रहे हैं।

मृदु शय्या पर अंगनाओं के साथ विलास करने वाले आप कंकरीली भूमि पर शयन कर रहे हैं।

अब भी आपको कल्याण करने का अवसर है, आप सचेत हो जाइये। शरीर, धन, वैभव आदि से मोह छोड़कर अपने स्वरूप का चिन्तन कीजिये।

विषयाकांक्षाएँ विष के समान आपको कष्ट देने वाली हैं।

अनन्तवीर्य के इस उपदेश को सुनकर अजगर को जातिस्मरण हो आया। रानियाँ भी अवधिज्ञान से अपने पति की गति को जान कर उन्हें समझाने के लिये वहाँ आयीं और उपदेश देने लगीं –

हे सर्पराज ! आप अपने ऊपर विचार कीजिये। विषयों की तृष्णा के कारण ही आपकी यह अवस्था हुई है। दु:ख है कि आप अब भी विषयासक्ति को नहीं छोड़ रहे हैं। स्त्री में आपकी आसक्ति इस समय भी पूर्ववत् विद्यमान है। यदि आप इस गति के दु:खों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करो, उनकी भक्ति ही इस जीव को दुर्गति से छुड़ाने वाली है। आप स्वयं विचार करें, हम लोगों ने वीरता पूर्वक संन्यास मरण धारण किया, जिसका प्रत्यक्ष फल देवगति आपके सामने है। आप मोह में पड़कर वैभव में आसक्त रहे जिससे यह अजगर की पर्याय प्राप्त हुई। इसप्रकार देव समझा कर वहाँ से चले गये। अनन्तवीर्य भी उसे सम्बोधन देकर चला आया और मुनिराज के पास आकर सारा वृत्तान्त कहा।

मुनिराज बोले – वत्स अनन्तवीर्य ! सर्पराज की आयु अब केवल १५ दिन की है।

अनन्तवीर्य – प्रभो ! आप एक बार ससंघ उनके उपकार के लिये अवश्य चलें। आपके वहाँ पहुँचने से अवश्य ही उनका कल्याण होगा।

अनन्तवीर्य के आग्रह को स्वीकार कर मुनिराज ने भी अजगर के पास जाकर उसे सम्बोधित किया–

सर्पराज ! अब तुम्हारी आयु १५ दिन की शेष है, अत: मोक्ष लक्ष्मी को देने वाले व्रतों को स्वीकार करो। इसप्रकार समझा कर उसे व्रत दे दिया। मुनिराज १५ दिन तक निरन्तर उस अजगर को उपदेश देते रहे और अन्त समय निकट आया हुआ जानकर बोले–

तुम्हारी आयु समाप्त हो रही है, अब शरीर से मोह छोड़कर आत्मकल्याण में प्रवृत्त होना चाहिये। भेदविज्ञान द्वारा अनेक भवों में संचित पाप इसी भव में समाप्त करने का उद्यम करना श्रेष्ठ होगा। अब संन्यास मरण धारण करना परम आवश्यक है। मुनिराज ने संसार

की क्षणभंगुरता, वैभवों की अस्थिरता का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया तथा संन्यास मरण धारण करने पर बहुत जोर दिया।

समाधिमरण का महत्त्व बतलाते हुए मुनिराज कहने लगे – एक भव में ही समाधिमरण करने से जीव अपना कल्याण कर लेता है। समाधिमरण करने वाले को आठ भव में अवश्य निर्वाण सुख मिलता है। वस्तुत: रत्नत्रय के समान इस जीव की भलाई करने वाला अन्य कोई नहीं है। यही संसार से श्रान्त जीवों को सुख और शान्ति देने वाला धर्म है, जो इस धर्म को भूल जाते हैं, वे अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण करते रहते हैं। इसप्रकार १५ दिनों तक धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उस अजगर ने प्राण त्याग किये, किन्तु वज्रदाढ़ से बदला लेने की भावना उसके मन में शेष थी, इसलिये वह तीन पल्य की आयु प्राप्त कर **विमल नामक भवनवासी देव** हुआ।

अनन्तवीर्य ने पुन: मुनिराज से पूछा– स्वामिन्! अब मेरे पिता की कौन-सी गति हुई है?

मुनिराज बोले – वत्स बदले की भावना शेष रह जाने से उन्हें भवनवासी देवों में जन्म लेना पड़ा है। परिग्रह कितना बड़ा पाप है, रानियों ने इसके त्याग से देवगति प्राप्त की, पर राजा को दो भव यों ही खोने पड़ रहे हैं। **वास्तव में मोह बहुत बड़ा पाप है, इसका प्रक्षालन जल्द नहीं हो सकता है। मुनिराज के वचनों का अनन्तवीर्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उसे संसार से विरक्ति हो गयी, अत: उसने अपने बड़े पुत्र स्वभावकुमार को बुलाकर राजतिलक किया और स्वयं अपरिग्रही बन तपस्या करने लगा।**

सम्मेदशिखर पर जाकर कर्म क्षय कर निर्वाण-लाभ प्राप्त किया। अनन्तवीर्य भगवान की जय हो।

एकबार अनुपरिचर राजा के जीव विमलदेव ने जब व्रजदाढ़ विद्याधर को देखा तो क्रोधाभिभूत हो उसकी समस्त विद्याओं को छीन लिया तथा विद्याधर और उसकी पत्नी को समुद्र में डाल दिया और कहा कि खूब पानी पियो और अपनी करनी का फल भोगो। तुमने मुझे चार पटरानियों के साथ तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए शिलाखण्ड से ढक कर मारा था, इसी का बदला मैंने चुकाया है।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि कोई भी उसे पूर्व में किए हुए कर्मों का फल मिलता ही है।

विद्याधर आर्तध्यान से मरण को प्राप्त हुआ , जिससे वह प्रथम नरक में गया। नरक से निकल कर **वज्रदाढ़ का जीव नीलगिरि (द्रोणीमान) पर्वत पर व्याघ्र हुआ।**

गुरुदत्त का जन्म एवं गृहस्थ जीवन–

इधर कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नामक नगर में विजयदत्त नामक राजा अपनी रानी विजयादेवी के साथ सुखपूर्वक राज्य करते थे। परन्तु इनको कोई सन्तान नहीं थी।

एकबार गुरुदत्त मुनिराज का समागम होने पर धर्मोपदेश प्राप्त कर राजा ने मुनिराज के सामने हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक पूछा –

हे प्रभो! हमारे कौन से पाप का उदय है जिससे कुल बढ़ाने वाली सन्तति हमें अभीतक प्राप्त नहीं हुई है। क्या कभी हमें भविष्य में सन्तान होगी या बिना सन्तान के यह राज्य यों ही नष्ट हो जायेगा।

गुरुदत्त मुनिराज – वत्स ! धैर्य रखो, घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें जैनधर्म को बढ़ाने वाला, निर्मल चरित्र का धारक धर्मात्मा पुत्र होगा। कुछ दिनों के उपरान्त अनुपरिचर राजा का जीव

विमलदेव चयकर विजयादेवी के गर्भ में आ गया। यथासमय रानी के एक सुन्दर पुत्र हुआ, **जिसका नाम गुरुदत्त रखा गया।***

चूंकि इस पुत्र के जन्म की घोषणा गुरुदत्त महाराज ने की थी, अत: उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ। यह शिशु आरम्भ से ही होनहार, विवेकी, समझदार और प्रतिभाशाली था। इसने थोड़े ही समय में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था।

जब गुरुदत्त राज्यभार ग्रहण करने के लायक हो गया तो पिता ने पुत्र को समस्त शासन भार सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो सुधर्माचार्य के पास जाकर दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की और दुर्द्धर तपस्या में लीन हो गये।

गुरुदत्त भी पिता के द्वारा दिये गये राज्य शासन को बहुत ही सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से चलाने लगा, उसने राज्य की वृद्धि की, प्रजा की सुख सुविधा के लिये अनेक प्रयत्न किये। प्रजा अपने नये महाराज से बहुत ही प्रसन्न थी। महामाण्डलिक और माण्डलिक राजा उनकी आधीनता स्वीकार कर उन्हें नमस्कार करने लगे।

एक दिन महाराजा गुरुदत्त चम्पापुरी के राजा धरित्रीवाहन की पुत्री अभयमती के रूप सौन्दर्य व यौवन को देखकर उसको अपनी महिषी बनाने के उद्देश्य से धरित्रीवाहन के पास दूत भेजते हैं। पर धरित्रीवाहन उन्हें अपनी कन्या देने से इन्कार कर देते हैं, जिससे गुरुदत्त चम्पापुरी पर आक्रमण कर उसे चारों ओर से घेर लेते हैं।

*** हस्तिनापुर उत्तम थान। विजयदत्त नृपति बुधवान।।**
जैनधर्म में तत्पर सदा। परम विवेकी तिष्ठत मुदा।।
ताके प्राणन तें अधिकाय। विजयानाम नार सुखदाय।।
तिन दोनों के पुण्य संयोग। उपजे गुरुदत्त पुत्र मनोग।।

(आराधना कथाकोष, पृष्ठ ३५४)

जब अभयमती को यह समाचार मिला कि कोई राजा उसका हरण करना चाहता है तो उसे बहुत चिन्ता हुई, क्योंकि उसने अपने मन में गुरुदत्त महाराजा से ही विवाह करने का निश्चय किया था। लेकिन जब अभयमती को दासियों द्वारा यह समाचार मिला कि महाराजा गुरुदत्त ही स्वयं सेना लेकर आये हैं और तुम्हारे पिता विवाह करने से मना कर रहे हैं तो वह स्वयं पिता के पास गयी और उन्हें अपना निश्चय विनयपूर्वक सुनाते हुए कहने लगी– हे पिताजी ! मैं अपना विवाह गुरुदत्त के सिवा अन्य किसी से नहीं कर सकती हूँ। इस भव के मेरे पति गुरुदत्त महाराजा ही हैं। कन्या की इच्छा जानकर राजा धरित्रीवाहन ने प्रसन्न होकर महाराजा गुरुदत्त के साथ पुत्री अभयमती का विवाह कर दिया। महाराजा गुरुदत्त प्रकृति का आनन्द उठाने के लिए अपनी प्रिय भामिनी के साथ कुछ दिन वहीं ठहर गये।

एक दिन ग्राम के कुछ लोग गुरुदत्त महाराजा के पास आये और हाथ जोड़कर कहने लगे – "देव! द्रोणीमान पर्वत पर एक व्याघ्र ने बड़ा उत्पात कर रखा है। उसने हमारे न केवल गोकुल को, अपितु कई मनुष्यों को भी खा लिया है। आप हमारी रक्षा करें।"

प्रजा की करुण पुकार सुनकर महाराजा गुरुदत्त सैनिकों को लेकर द्रोणीमान पर्वत पर पहुँचे। सेना के कलकल से घबराकर वह सिंह एक गुफा में घुस गया। उसे मारने का अन्य कोई उपाय न देखकर सैनिकों ने राजाज्ञा पाकर गुफा में ईंधन इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी। सिंह धुएँ और आग के कारण उसी गुफा में आर्त-रौद्र परिणामों के साथ मरण को प्राप्त कर द्रोणमत के नीचे पल्लीखेट नामक गाँव में आभरण नामक ब्राह्मण का हलमुख/कपिल नामक पुत्र हुआ।

महाराजा गुरुदत्त अपनी पत्नी को लेकर सैनिकों के साथ हस्तिनापुर लौट आये और पूर्ववत् राज्य शासन करने लगे।

दीक्षा –

एक दिन हस्तिनापुर में अमितास्रव नामक मुनिराज का पदार्पण हुआ। महाराजा गुरुदत्त को अपनी पत्नि अभयमती का पूर्वभव को जानने की उत्कंठा उत्पन्न हुई तब दयालु मुनिराज अभयमती का पूर्वभव इसप्रकार कहने लगे।

चम्पापुर नगर में गरुडवेग नाम का किरात रहता था, उसकी स्त्री का नाम गोमुखी था। एक दिन गोमुखी चतुर्विध संघ सहित आये समाधिगुप्त नाम के मुनिराज के पास धर्मोपदेश सुन रही थी। उपदेश श्रवण करने के उपरान्त सभी लोगों ने व्रत-नियम ग्रहण किये। श्रावकों को व्रत लेते देखकर गोमुखी ने भी अणुव्रत ले लिये। उसका पति गरुडवेग प्रतिदिन कबूतर पकड़ कर लाता था, पर वह उसको छोड़ देती थी, जिससे वह नाराज होकर प्रतिदिन पीटता था। एक दिन क्रोध में आकर उसने गोमुखी को घर से निकाल दिया, वह घर से निकल कर अपने एक कुटुम्बी के यहाँ रहने लगी। मरते समय उसने धरित्रीवाहन राजा का ऐश्वर्य प्राप्त करने की अभिलाषा की, जिससे यह उनकी पुत्री हुई।

गोमुखी के व्रतों का फल जानकर महाराजा गुरुदत्त और रानी अभयमती सोचने लगे कि व्रतों के सिवाय अन्य कोई संसार में रक्षक नहीं है। धर्म ही इस जीव को लोक-परलोक के दु:खों से मुक्ति दे सकता है। अब तक भोगों में आसक्त रहकर हमने अपने जीवन को कोंड़ी के मोल बेचा है, पर अब आत्मकल्याण करने के लिये तत्पर हो जाना चाहिये। यह जीव व्यसनों में फसकर अपना अहित करता है, अब अवश्य ही हम लोगों को आत्मकल्याण में लगना चाहिये, इसप्रकार निश्चय कर महाराजा गुरुदत्त और अभयमती रानी को संसार से विरक्ति हो गयी। उन्हें संसार के वैभव काटने लगे।

गुरुदत्त विचारने लगे कि इस मनुष्य भव का काल कौड़ियों के मूल्य खोया है, यह जीव सांसारिक विषय भोगों में फसकर अपना अहित करता है। उनके मन में संसार से विरक्ति के भाव जागृत होने लगे। जिस प्रकार मैंने प्रिय भामिनी को प्राप्त करने के लिए सेना लेकर चन्द्रपुरी[१] को घेर कर इस भव की कामिनी प्राप्त की थी; उसी प्रकार उसी चन्द्रपुरी में मुक्तिवधू को प्राप्त करने के लिये चार आराधनारूपी चतुरंगिणी सेना लेकर मैं अष्टकर्मों को घेरने के लिए तत्पर हूँ।

जिनचरण कमल के भ्रमर राजा गुरुदत्त को संसार से विरक्ति हो गई। अब उन्हें संसार के वैभव असार लगने लगे। संसार, शरीर, भोगों से उदासीन गुरुदत्त के मन में उपशम रस प्रवाहित होने लगा। उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर सारी बातें समझा कर उसका राजतिलक कर दिया और स्वयं अमितास्रव आचार्य से जिनदीक्षा ग्रहण कर निज आत्म साधना के साथ-साथ जिन सूत्रों का अभ्यास करने लगे। थोड़े दिनों में ही द्वादशांग श्रुतज्ञान के धारी होकर संघ में रहे और पश्चात् गुरु आज्ञा से एकाकी विहार करने लगे।

अभयमती ने इन्हीं आचार्य की शिष्या सुव्रता नामक आर्यिका से व्रत ग्रहण किये। अभयमती की आयु थोड़ी थी, अत: उसने अपनी मृत्यु निकट जान समाधिमरण धारण कर लिया। मरते समय उसके

---

१. आचार्य प्रभाचन्द्र ने ''आराधना कथाकोष'' में लिखा है– अवनी पर करते विहार, क्रमतें आये शशिपुर मंझार। **आचार्य देवसेन ने उल्लेख किया है –** 'क्रमेण विहार क्रमं विदधानः चन्द्रपुरी गमेत्य' तथा **आचार्य नयसेन ने लिखा है** कि एकाकी विहार करते हुए मुनिराज गुरुदत्त पल्लीखेट नामक गाँव के जंगल में आए और रात्रि योग धारण कर स्वरूप में मग्न हुए। इसप्रकार चाहे शशिपुर हो अथवा चन्द्रपुरी या पल्लीखेट तीनों एक हैं क्योंकि इनकी स्थिति द्रोणगिरि पर्वत के नीचे है, ऐसा उल्लेख हुआ है।

परिणामों में पर्याप्त शान्ति थी, जिससे वह कापिष्ठ स्वर्ग में मितकान्त नामक देव हुई।

उपसर्ग, केवलज्ञान एवं निर्वाण–

एकबार गुरुदत्त आचार्य विहार करते पल्लीखेट[१] नामक गाँव के जंगल में आये और संध्या हो जाने से उन्होंने वहीं रात्रियोग धारण किया। प्रात:काल हलमुख/कपिल ने गुरुदत्त मुनिराज को देखा। वह अपने खेत में हल जोतने जा रहा था तथा इसी खेत में अपनी स्त्री को भोजन लाने के लिए कह गया था। पर यहाँ खेत में पानी भरा हुआ था, जिससे हल चलाना बहुत ही कठिन था, अत: वह वहाँ बैठे गुरुदत्त मुनिराज से कहने लगा –

''रे साधु ! जब मेरी स्त्री यहाँ भोजन लेकर आवे, तो तू उसे कह देना कि मैं पश्चिम के खेत में हल जोतने गया हूँ, वहाँ पर भोजन दे आ। देरी नहीं करे और देखो भूल मत जाना, अन्यथा मुझे भूखा रहना पड़ेगा और हल कभी भी भूखे रहकर नहीं जोता जा सकता है।''

स्त्री जब दोपहर की रोटियाँ लेकर आयी और खेत में हलमुख /कपिल को नहीं पाया तो बहुत नाराज हुई और गालियाँ देती हुई घर लौट आयी। इधर पश्चिम वाले खेत पर जब संध्या समय तक भी भोजन नहीं आया तो हलमुख/कपिल को बड़ा कष्ट हुआ और वह क्रोध में पागल होकर घर आया तथा स्त्री को खूब पीटने लगा।

तब स्त्री बोली कि आप खेत पर थे ही कहाँ, मैं घंटों वहाँ बैठकर आयी हूँ, मेरी क्या गलती है ? मैं पश्चिम के खेत में काम करने जा रहा हूँ, यह बात तुम से किसी आदमी ने नहीं कही। मैं उस साधु से कह कर गया था, बड़ा मक्कार निकला। अच्छा अभी उसकी मरम्मत करता हूँ, क्रोध में बड़बड़ाते हुए हलमुख/कपिल वहीं चला गया जहाँ मुनिराज ध्यानस्थ विराजमान थे।

वह मुनिराज के पास गया और उन्हें आग के हवाले कर दिया।[२]

क्षमावान मुनिराज उपसर्ग आया जानकर ध्यान में लीन हो गये। उन्होंने समस्त विकारों का त्याग कर क्षपकश्रेणी आरोहण कर लिया। ध्यान के बल से कर्म श्रृंखला टूटने लगी, अनादिकालीन कर्म जल-जल कर भस्म होने लगे। अनन्तर शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्म नाशकर कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लिया, चारों निकाय के देव आकर उनकी स्तुति करने लगे।

इधर हलमुख/कपिल देवों को आया देखकर आश्चर्य में डूब

---

२. मुनि उपसर्ग प्रसंग में आचार्य नयसेन ने धर्मामृत ग्रंथ में लिखा है कि हलमुख ब्राह्मण के द्वारा उपसर्ग हुआ, प्रभाचन्द्र के अनुसार कपिल नाम के ब्राह्मण द्वारा उपसर्ग किया गया। यथा–

इस विध पापी कपिल जब, कीनो कोप प्रचंड।
मुनवर के ढिंग आयके, लायो काष्ठ सु खंड॥
चहुँ ओर कर कर बाढ़, अगनि लगाई तास में।
मुनि तन होय निराड़, शुक्लध्यान ध्यावो तबे॥

आचार्य देवसेन ने आराधनासार में लिखा है – "कपिलेन शाल्मलि तूलेन बेष्ठियत्वा स यतिर्ज्वलति ज्वलने क्षिप्रः" इसप्रकार मुनिराज गुरुदत्त पर उपसर्ग कर्ता को चाहे कपिल कहें अथवा हलमुख, वह पूर्व पर्याय में सिंह का जीव था जिसे कि राजा गुरुदत्त के द्वारा जलाकर मारा गया था।

इसी प्रकार उपसर्ग के साधनों में भले ही भिन्नता हो, यथा आचार्य नयसेन ने कपड़े के चिथड़े तेल में भिगोकर मुनि शरीर में लपेट कर आग लगाना बतलाया है, जबकि आचार्य प्रभाचन्द्र ने काष्ठ खण्ड से मुनि शरीर बेढ कर काष्ठ खण्ड में आग लगाना स्वीकार किया है। आचार्य देवसेन ने श्यामल नाम के वृक्ष के फलों की रुई मुनि शरीर में लपेट कर आग लगाना बतलाया है।

सार रूप में उपसर्ग के साधन भले ही भिन्न-भिन्न कहे गये हैं परन्तु उपसर्ग मनुष्यकृत है और अग्नि से शरीर जलाकर किया गया है, जो तीनों आचार्यों के कथन का एकमत सार है।

गया तथा कुछ भयभीत भी हुआ। मुनिराज के शरीर में लगायी गयी आग अपने आप शान्त हो गयी थी। उनके शरीर से अपूर्व कान्ति निकल रही थी, हलमुख/कपिल ने अपने पापों का प्रायश्चित किया और अपने पूर्वभवों को जानने की इच्छा प्रगट की, गुरुदत्त केवली द्वारा बताये गये अपने पूर्व भवों को सुनकर उसे संसार से विरक्ति हो गयी, वह अपने किये कर्मों का पश्चाताप करने लगा। अपने द्वारा किये गये उपसर्ग की बारम्बार क्षमायाचना करने लगा।

पश्चात् एकबार उसने अवसर्पिणी पंचमकाल के जीवों का स्वरूप और व्यवहार जानने की अभिलषा प्रगट की।

गुरुदत्त केवली की दिव्यध्वनि में आया कि–

१. पंचमकाल के मनुष्य धर्मात्मा और दयालु नहीं रहेंगे।
२. पंचमकाल के मनुष्य शील, श्रद्धा, दया से रहित होंगे।
३. मनमाने शास्त्र बनाये जायेंगे।
४. सन्तान पिता की आज्ञा नहीं मानेगी।
५. चोर, डाकुओं एवं लोभी, लम्पटी लोगों की बहुलता रहेगी।
६. आपस में सहानुभूति और प्रेम का अभाव रहेगा।
७. स्त्रियाँ, पतियों पर विश्वास नहीं करेंगी। पतिव्रता नहीं होंगी।
८. व्यसनी व्यक्ति अधिक उत्पन्न होंगे।
९. पंचमकाल में विद्वानों का सम्मान नहीं होगा।
१०. विद्वान भी चरित्रवान नहीं होंगे।
११. धनिक घमंड में रत रहेंगे।
१२. गरीबों का उपकार करने वाला कोई नहीं रहेगा।
१३. सभी मनुष्य कषायों के वशीभूत हो जायेंगे।
१४. राजलक्ष्मी नीच कुल में चली जायेगी।
१५. अकुलीन राजा होंयगे तथा इनका ही सम्मान रहेगा।

१६. धर्मात्मा दरिद्री होंगे, इन्हें नाना प्रकार के कष्ट होंगे।
१७. जैनधर्म से द्वेष करने लगेंगे, कुदेव और कुगुरुओं को मानेंगे।
१८. लोग शूरता-वीरता छोड़ चोरी और डकैती करेंगे।
१९. वैश्य अहिंसक व्यापार छोड़ नीच कर्म करेंगे।
२०. धर्म की मर्यादा का लोप हो जायेगा।
२१. आत्मकल्याणकारी जैनधर्म कुछ व्यक्तियों में ही रह जायेगा।
२२. मोक्ष इस काल में किसी को नहीं मिलेगा।
२३. हाँ ! धर्मात्मा व्यक्ति धर्म के प्रभाव से स्वर्ग जायेंगे।
२४. पुण्योदय से विभूतियाँ प्राप्त होंगी।
२५. प्रकृति भी उलटे रूप में प्रवृत होगी।
२६. सर्दी में गर्मी और गर्मी में सर्दी रहेगी।
२७. समय पर वर्षा नहीं होगी, असमय पर वर्षा होगी।
२८. इस अवसर्पिणी पंचमकाल में परहित करनेवालों का अभाव होगा और स्वार्थी लोगों का बाहुल्य होगा।

इसप्रकार पंचमकाल की व्यवस्था सुनकर हलमुख/कपिल को संसार से विरक्ति हो गयी और उसने गुरुदत्त केवली के समक्ष जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर अनादिकालीन मिथ्यात्व व कषायों का त्याग कर सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र अंगीकार कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त किया।

केवलज्ञान के पश्चात् विहार कर धर्मोपदेश देते हुए भगवान गुरुदत्त द्रोणागिरि पर्वत पर पधारे और योग निरोध कर अन्य मुनिराजों सहित समश्रेणी में सिद्धालय में विराजमान हुए।

इसप्रकार द्रोणागिरि सिद्धक्षेत्र के साथ-साथ उसकी तलहटी में स्थित भू-भाग केवलज्ञान प्राप्ति के कारण अतिशय क्षेत्र भी है।

बोलो ! गुरुदत्त महाराज, गुरुदत्त केवली भगवान और गुरुदत्त सिद्ध भगवान की जय हो !

गुरुदत्त मुनिराज का समय

गुरुदत्त मुनिराज के समय के बारे में आराधनासार में आचार्य देवसेन ने कोई उल्लेख नहीं किया है, कारण कि उनका प्रयोजन क्षपक[१] को मात्र उपसर्ग के विजेताओं का स्मरण कराकर सावधान करना है। इसीप्रकार आराधना कथाकोष पद्य में भी मुनि गुरुदत्त के बारे में आचार्य नयसेन ने समय के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है।

आचार्य नयसेन के अनुसार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर स्वामी के गणधर गौतमस्वामी से प्रश्न पूछा, तब गौतमस्वामी ने महाराज श्रेणिक को अपरिग्रह व्रत की कथा के अंतर्गत गुरुदत्त मुनिराज की कथा का वर्णन किया है। (धर्मामृत, पृष्ठ १९८)

आचार्य नयसेन ने गुरुदत्त के पूर्व भवों के आख्यान में उल्लेख किया है कि जब गुरुदत्त चार भव पूर्व राजा अनुपरिचर के रूप में पटरानियों सहित तालाब में जल क्रीड़ा में मग्न थे, तब वज्रदाढ़ विद्याधर ने एक शिला से तालाब ढक दिया, जब राजा और रानियाँ प्रयत्न करने पर भी बाहर नहीं आ सके, तब मरना निश्चित जानकर रानियों ने राजा से मोह त्याग कर शांति से संन्यास मरण धारण करने के प्रसंग में कहा कि "महाराज ! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह अपने भव को मत बिगाड़िए।" (धर्मामृत, पृष्ठ १९९)

चूंकि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बारहवें एवं अंतिम चक्रवर्ती थे, जो कि भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ के समय में हुए हैं।

(दर्शनसार, भाग-३, पृष्ठ २५, आचार्य धर्मभूषण)

राजा अनुपरिचर मरकर अजगर एवं पश्चात् तीन पल्य आयु वाले भवनवासी देवों में देव हुए अनन्तर गुरुदत्त की पर्याय धारण की।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि गुरुदत्त का काल, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के बाद एवं भगवान महावीर स्वामी के पूर्व अर्थात् भगवान पार्श्वनाथ के शासनकाल का ठहरता है।

१. समाधि करने वाले मुनिराज।

सिद्धक्षेत्र द्रोणागिरि

समता सुधा का पान करके, जो सदा नि:संग है।
शोकार्त न करता जिन्हें प्रतिकूल कोई प्रसंग है॥
कृषक ने उपसर्ग ढाया था सताने के लिये।
गुरुदत्त मुनि साधन बना वह मोक्ष पाने के लिये॥
तीर्थ द्रोणागिरि तो चालो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥टेक॥
यही भूमि गौरवशाली, गुरुदत्त ऋषि आये।
जय उपसर्गजयी समताधर सिद्ध दशा पाये॥
लघु सम्मेदशिखर तीरथ भी यही कहाता है।
सिद्धों की श्रेणी में मिलने मन ललचाता है॥
भावना प्रभुता की भालो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥१॥
धन्य-धन्य मुनि दशा शांति का झरना झरता है।
पंचमहाव्रत समिति गुप्ति चारित्र दमकता है॥
कंचन-कांच बराबर जिनके, महल मशान समान।
शत्रु-मित्र की बात कहाँ सब दिखते हैं भगवान॥
दिगम्बर मुद्रा तो ध्यालो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥२॥
जिन्हें कंकड़ों जैसा लगता मणि मुक्ता का ढेर।
जिनका समता धन खरीदने को असमर्थ कुबेर॥
जिन्हें मिला चैतन्य खजाना सहज शांति का धाम।
जैनधर्म के हीरे-मोती लुटा रहे अविराम॥
दिगम्बर धर्म सहज ध्यालो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥३॥

क्रूर सिंह ने तहस-नहस जन-जीवन कर डाला।
राजा और प्रजा ने मिलकर उसे जला डाला॥
सिंह हुआ फिर क्रूर ब्राह्मण मुनि उपसर्ग किया।
देह लपेटी रुई का ईंधन ऊपर डाल दिया॥
पूर्वभवों से चला बैर भव-भव दुख पहुँचाया।
शुक्लध्यान पर समता से कैवल्यज्ञान पाया॥
बैर भावों को धो डालो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥४॥
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि समता रस धारी।
एक स्यालनी जुगल बाल युत पांव भख्यो भारी॥
गजकुमार मुनि के सिर ऊपर विप्र अगनि जारी।
पांचों पांडव देह जली पर समता नहिं छोड़ी॥
आत्मबल ऐसा अपना लो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥५॥
तीन पर्वतों पर जिनमंदिर मंगलमय शोभे।
गर्भ गुफा भी देख साधकों का मन थिर होवे॥
चौबीसी जिनमंदिर सुन्दर मन मयूर नाचे।
सिद्धायतन सिद्धि का दाता साधक मन राचे॥
सिद्धों से बातें अब करलो....................।
तीरथ करलो, भाव जगालो, कल्मष धो डालो॥६॥

ज्ञान ध्यान अध्ययन मनन समता सबका सार।
समता से बढ़कर धरम कोई नहीं सुखकार॥
यही तीर्थ आराधना यही धर्म का सार।
समता हिरदय राखिये समता शिवमुख द्वार॥

– पण्डित राजेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर

दिव्य तो आत्मा है

जब महावीर स्वामी का जीव पुररुवा भील पर्याय में एक मुनिराज को हिरण समझकर अपने वाण का निशाना बना रहा था पर पत्नि कालिका के कहने पर कि कोई वनदेवता (मुनि) हैं, उनके पास गया और उनके उपदेश द्वारा उसका परिणाम बदल गया वह सन्मार्ग पर लग गया, उसके कुछ मुख्य अंश पढ़िये –

कालिका – (हाथ जोड़कर पुनः नमस्कार करती हुई) देवता ! आप अवश्य कोई दिव्यपुरुष हैं।

साधु – दिव्य तो आत्मा है, मानव तो सब समान धर्मवाले हैं। परन्तु वह शुभ कर्मों से श्रेष्ठ और अशुभ कर्मों से निम्न श्रेणी का कहलाने लगता है।..........हाँ तो हम यह जानना चाहते थे पुरुरवा कि तुम्हें चोट से कष्ट की अनुभूति हुई ?

पुरुरवा – हाँ देवता,

साधु – तुम तनिक विचार करो कि जब तुम्हारा तीर मूक पशुओं के तन में विंधता है तो उन्हें कष्ट नहीं होता होगा ?

पुरुरवा – होता है देवता ! वे प्राण निकलने तक छटपटाते रहते हैं। दिन के प्रकाश की भाँति इसे झुठलाया नहीं जा सकता।

साधु – और यह भी बतलाओ कि उन्होंने क्या अपराध किया है? जिसके दण्ड स्वरूप तुम उनके प्राण हरण करते हो।

कालिका – वे बेचारे क्या अपराध करेंगे जी ! दूर से देखकर ही भयभीत हो भागते हैं। हिरण तो इतना भीत रहता है कि तनिक आहट पाते ही घास भी खा रहा हो तो भाग जाता है।

साधु – तुम भी कुछ कहना चाहते हो पुरुरवा !

पुरुरवा – कालिका सत्य कह रही है देवता ! अब मैं क्या कहूँ?

साधु – पुरुरवा ! स्मरण रखो, जो निरपराधों की हत्या में संलग्न

रहता है, दूसरों के द्वारा उनकी भी हत्या होती है। यह दुर्लभ मानव जन्म अनेक सत्कर्मों का फल है। इसका सदुपयोग करो। स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतन्त्र बनने का प्रयत्न करो।

पुरुरवा – देवता ! आप अंतर्यामी हैं क्या यह नहीं जानते कि मैं इस वनखण्ड का एक मात्र शासक हूँ ? यहाँ के निवासी मेरे आधीन हैं ?

साधु – (सहज भाव से हँसते हुये) जानते हैं पुरुरवा ! परन्तु स्वतन्त्र कहाँ ? तनिक सी जिह्वा तुझे अपना दास बनाये हुये है। क्या माँस भक्षणार्थ अपने प्राण हथेली में रखकर तू शिकार नहीं करता?

कालिका – क्षुधा की ज्वाला तो शान्त करना ही पड़ती है ?

साधु – यह मात्र बहाना है। प्रकृति ने विविध प्रकार के फल धान्यादि उत्पन्न किये हैं, उनसे क्षुधा शान्त होती है। क्षुधा-पूर्ति हेतु अपने उदर को श्मशान नहीं बनाया जाता।

कालिका – देवता ! धान्यादि के भक्षण में भी पराधीनता रहेगी; क्योंकि उदर-पूर्ति जीवन का प्रमुख अंग है।

साधु – सामिष भोजन से निरामिष भोजन में पराधीनता कम है। जठराग्नि को केवल आहुति अनिवार्य है। वह शाक, फल, रूखा-सूखा खाकर भी तृप्त हो जाती है। संतोष तो जिह्वा को नहीं होता, जो विविधता की रसिक चटोरी है।

पुरुरवा – यह विचार तो मैंने आज तक किया ही नहीं देवता! आपका कथन सर्वथा सत्य है।

साधु – भीलराज ! क्या कभी तुम किसी मृत को जीवित कर सके हो ?

कालिका – क्या कहते हो देवता ! ऐसा कभी हुआ है ?

साधु – विचार करो जब हम किसी को जीवन नहीं दे सकते तो जीवन हरण क्यों करें ? **– जै.क.संग्रह भाग २, पृष्ठ-१११-११२**

मचा मोहल्लों में हल्ला...

(यह एक ही व्यक्ति के दो प्रकार के विचारों को व्यक्त करने की कहानी है। असमानजातीय मनुष्य पर्याय का धारक यह मानव जब शास्त्रों से पढकर यह निर्णय करता है कि इस पर्याय में एक तो ज्ञान दर्शन स्वभावी चेतन आत्मा है और दूसरा अनंत पुद्गल परमाणु मय शरीर है। तब वह शरीर की तरफ से जो कुछ आत्मा से कहता है और आत्मा की तरफ से जो कुछ शरीर से कहता है। उसी चर्चा को आधार बनाते हुए अंत में निर्णयात्मक स्थिति का चित्रण इस कहानी में किया गया है। जो हमें भेद ज्ञान मे सहायक होगी। – सम्पादक)

वे सब आपस में एक-दूसरे के पड़ोसी थे। आमने-सामने और आजू-बाजू में उन सबके मकान थे।

मैं कितना सुन्दर हूँ। सारी दुनिया मुझ पर फिदा है और तुम्हें तो कोई जानता तक नहीं। –एक पड़ौसी ने दूसरे पड़ोसी से कहा।

तुम सुन्दर दिखाई जरूर देते हो पर वास्तव में सुन्दर हो नहीं। तुम्हारी यह गोरी चमड़ी है, यदि उसकी एक ही पर्त उघाड़ दी जाये तो तुम्हारे सामने देखने के लिए कोई तैयार तक भी न होवे । फिदा होने की बात तो बहुत दूर की रही। –दूसरा पड़ोसी बोला।

कौन उघाड़ेगा मेरी पर्त, किसमें इतनी हिम्मत है जो मेरी पर्त को उघाड़ सके। तुम उघाड़ोगे क्या? पहले वाला बोला।

अरे ! मैंने यह कब कहा? मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूँ कि ऊपर से तुम जितने सुन्दर हो अन्दर से तुम उतने ही मलिन हो, अपवित्र वस्तुओं के संग्रहालय हो। –दूसरा पड़ोसी बोला।

यह सुनकर पहले वाले को कुछ अच्छा नहीं लगा। वह क्रोध से आग बबूला होकर बोला– तुम्हारी यह हिम्मत, मुझे अपवित्र कहते शर्म नहीं आती। अपवित्र तो तुम स्वयं हो। कामी, क्रोधी, मानी,

मायावी, लोभी, पापी दुनिया में जितने अवगुण हैं वह सारे तुम्हारे अन्दर भरे हुए हैं। दूसरे के दोष देखने से पहले स्वयं में भी तो झांक लिया करो।

ओ हो ! तुम तो व्यर्थ ही गुस्सा कर रहे हो। झगड़े पर उतर आते हो। मैं तुमसे कोई झगड़ा थोड़े ही करना चाहता हूँ। चलो अब इस बात को यहीं छोड़ो। –दूसरा बोला।

कैसे छोड़ दूँ अब तो इस बात का फैसला होकर ही रहेगा कि तुमने मुझे क्या समझ कर अपवित्र कहा। –पहला बोला।

जो वस्तु मल-मूत्र की खान हो, जिसके नव द्वारों से निरन्तर घिनावनी वस्तुओं का प्रवाह होता रहता हो; जो थूक, लार, खून, पीप आदि वस्तुओं का पिटारा हो उसे अपवित्र नहीं कहा जायेगा तो क्या पवित्र कहा जायेगा।

सुनो तुममें और मुझमें सबसे बड़ा फर्क यही है कि तुम ऊपर से सुन्दर दिखाई देते हो; जबकि हो बड़े ही बदसूरत। जबकि मैं ऊपर से कलुषित दिखाई देता हूँ परन्तु वास्तव में मैं हूँ बड़ा ही खूबसूरत, परम पवित्र एवं अनन्त गुणों का पुंज। हम दोनों की इन विशेषताओं के कारण सारा जगत भरमाया हुआ है। –दूसरा पड़ोसी बोला।

पहले पड़ोसी का नाम था देहीमलजी उर्फ शरीरकुमार और दूसरे का नाम था चेतनलालजी उर्फ आत्माराम।

उन दोनों की तू-तू, मैं-मैं तथा हो-हल्ला सुनकर मोहल्ले के सारे लोग इकट्ठे हो गए।

कुछ लोगों को छोड़कर अधिकांश लोग तो ऐसे थे जो शरीर को अपना पड़ोसी मानने के बजाय शरीर को आपरूप अनुभव करते थे, तथा अपने से भिन्न अगल-बगल में रहने वाले व्यक्तियों को

अपना पड़ोसी समझते थे कुछ तो ऐसे भी थे जिन्होंने आत्मा और शरीर की भिन्नता की चर्चा तो जरूर सुनी थी परन्तु अपने आपको अनुभव शरीर रूप ही करते थे।

कुछेक विचक्षण पुरुष ऐसे भी थे, जो अपने आप को साक्षात् आत्मा रूप ही अनुभव करते थे तथा शरीर को निःसंदेह अपना पड़ोसी समझते थे।

अरे भई ! क्यों झगड़ रहे हो, झगड़ा किस बात है, यहाँ और तो कोई दिखाई नहीं दे रहा फिर आप जोर-जोर से किस पर चिल्ला रहे हो। -एक सज्जन बीच बचाव को आगे आते हुए बोले-

अरे भाई ! आप इतने सारे लोग यहाँ इकट्ठे क्यों हो गये? यहाँ कोई झगड़ा-बगड़ा नहीं हो रहा। दरअसल बात यह है कि मैं अपने निकटतम पड़ोसी देहीमलजी को यह समझा रहा था कि ऊपर-ऊपर के नाक-नक्श और गोरी चमड़ी को देखकर घमण्ड करना ठीक बात नहीं है।

अन्दर तो गंदगी का पुंज है जरा इसका भी ख्याल कर लिया करो। -संयुक्तचन्द्रजी का आत्मा अपने शरीर की तरफ इशारा करते हुए बोला।

कुमार संयुक्तचन्द्रजी की बात सुनकर अधिकांश व्यक्ति चकित रह गये, जो अपने आपको ही गंदगी का पुंज बता रहा है और ऐसे बात कर रहा है, मानो शरीर उससे भिन्न कोई अन्य वस्तु हो।

बीच-बचाव को आये लोग कुछ कह पाते उससे पहले ही शरीरकुमार जोर से चिल्लाया-

खबरदार जो मुझे गंदगी का पुंज कहा- अबे दो कौंडी के, तू स्वयं तो कषाय और पाप का पुंज है और मुझे जलील करना चाहता है, ठहर जा मैं तुझे अभी दिखाता हूँ।

अबे ओ संसारपुरी के प्रसिद्ध ठग देहीमल दुनिया के सारे ज्ञानी तेरी वास्तविकता से परिचित हैं। मैं अविनाशी अखण्ड ज्ञानतत्त्व। तू मुझे क्या सबक सिखायेगा तू मेरा क्या बिगाड़ लेगा –कुमार संयुक्तचन्द्रजी का आत्मा बोला।

भोले-भाले लोगों को यह समझ में नहीं आ रहा था कि यह एक ही व्यक्ति खड़ा-खड़ा किससे झगड़ रहा है। जबकि ज्ञानी समझ रहे थे कि झगड़ा आत्मा और शरीर में हो रहा है। जो लोग अपने आपको शरीररूप ही मान रहे थे उनको शरीर की निन्दा बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी। जबकि ज्ञानियों को प्रसन्नता हो रही थी।

हुआ वही जो होना था। लोग दो गुटों में बंट गए। कुछ शरीर की तरफदारी करने लगे तो कुछ आत्मा की। झगड़ा इस कदर बढ़ा कि सब हा-हो करने लगे, चिल्लाने लगे। शोर शराबे में कौन किसको क्या कह रहा था। कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था।

पास ही एक बेड़े में पशु बंधे हुए थे। हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, बैल, भैंस, गाय, बकरी आदि- झगड़े की भनक उनको भी लगी तो अपने-अपने पक्ष को लेकर वे भी आपस में झगड़ पड़े, गधा ढ़ेंचू-ढ़ेंचू करके चिल्लाने लगा, तो घोड़ा हिनहिनाने लगा।

अपने-अपने पक्ष को लेकर मोहल्ले वे कुत्ते और बिल्लियाँ भी आपस में झगड़ पड़े। चूहे भला पीछे क्यों रहते।

गाँव भर में यह बात फैल गयी कि हुल्लड मुरादाबादी मोहल्ले में घमासान मच गया है। झगड़ा कहीं दंगे का रूप न ले ले इस आशंका से धड़ाधड़ दुकानों के शटर नीचे गिर गए। बाजार बंद हो गये। लोग अपने-अपने घरों में दुबक गये और झरोखों से बाहर को झांकने लगे।

प्रबुद्ध नागरिकों की सूचना पर पुलिस आ पाती इसके पहले ही झगड़ा शान्त हो चुका था।

बुजुर्ग लोगों ने समझदारी का परिचय देते हुए सबको समझाया कि भाई अपनी-अपनी जगह पर सब सही हैं। व्यर्थ में क्यों झगड़ते हो। विशेष समाधान प्राप्त करने के लिए सीमंधर भगवान के समवशरण में क्यों नहीं चले जाते।

बुजुर्गों की बात सबने मानली और अगली सुबह को सभी ने समवशरण में जाकर समाधान प्राप्त करने का निर्णय ले लिया।

अगली सुबह सारा मोहल्ला समवशरण के लिए प्रस्थान कर गया। पशुओं का काफिला भी समवशरण की तरफ बढ़ चला। सबसे आगे कुत्ते और सबसे पीछे हाथी।

दिव्यध्वनि खिरी तत्त्वों का विशद व्याख्यान होने लगा–

''यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से देखा जाये तो शरीर न तो सुन्दर ही है न ही असुन्दर वह तो मात्र ज्ञान का ज्ञेय है। उसमें सुन्दर अथवा असुन्दर की कल्पना तो अज्ञानजनित राग-द्वेष का कार्य है। तथापि संसारी जनों की अपेक्षा सुन्दर अथवा मलिन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक कहा जाता रहा है। यह शरीर ऊपर से सुन्दर अवश्य दिखता है, परन्तु अन्दर से महामलिन घिनावना एवं बदबूदार है यह बात परम सत्य है।

कुमार संयुक्तचन्द्रजी के आत्मा ने अपने पड़ोसी शरीर को अपवित्र एवं घिनावना कहा है तो शरीरकुमार के लिए उसमें बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं है।

अनादि काल से संसारी जीव शरीर को ही अपना स्वरूप जानते हैं तथा उसकी ऊपरी सुन्दरता को देखकर उस पर मोहित हो रहे हैं उनकी भ्रान्ति एवं राग को तोड़ने के लिए शरीर की वास्तविकता को बताना भी अत्यन्त जरूरी है।

शरीर अशुचि है, विनाशीक है, पुद्गल की पर्याय है, रोगों का घर है, पूरन-गलन ही इसका स्वभाव है।

यद्यपि पर्याय दृष्टि से देखने पर संसारी आत्मा मोही, रागी, द्वेषी, कामी, क्रोधी हो रहा है यह बात भी सत्य है परन्तु स्वभाव दृष्टि से देखा जाए तो यह परम पवित्र, आनन्द का रसकन्द, शक्तियों का संग्रहालय, अनादि-अनन्त, अविनाशी, गुणों का गोदाम भगवान स्वरूप है यह भी परम सत्य है। पर एवं रागादि परभावों से एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व को तुड़ाने के लिए इस परम सत्य बात को अर्थात् आत्म स्वभाव को जानना भी अत्यन्त जरूरी है।

संक्षेप में यह शरीर ऊपर से जैसा दिखता है। वैसा है नहीं तथा आत्मा भी ऊपर से जैसा अनुभव में आता है वैसा है नहीं – ऐसा अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक कहा जाय तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

मोक्ष अर्थात् सच्चे एवं पूर्ण सुख के इच्छुक जीव को दृढ़ता पूर्वक शरीर को पड़ोसी, मलिन, विनाशीक एवं आत्मा को शक्तियों का पुंज भगवान स्वीकार करना चाहिए। शरीर संसारपुरी का प्रसिद्ध ठग है तथा आत्मा मोक्षपुरी का प्रसिद्ध राजा है, साहूकार है।''

अनेक जीवों के संदेह दूर हुए। अनेकों ने भगवान की बात को स्वीकार किया। कई कोरे ही रह गये। सभा विघटित हुई और सभी अपने-अपने घर को रवाना हुए।

देहीमलजी भगवान की आज्ञा के आगे कर भी क्या सकते थे, मोहल्ले का जन-जीवन सामान्य हो गया सभी अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो गये।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। बहुत परिवर्तन हो चुका था। कायम रहकर प्रतिसमय पलटते रहना द्रव्यों का स्वभाव जो ठहरा। देहीमल भी अपने में आने वाले परिवर्तन से बच कैसे सकते थे।

कहाँ गई तुम्हारी सुन्दरता जिस पर तुम्हें इतना नाज था। अब तो तुम्हारी ऊपर की सुन्दरता भी असुन्दरता में परिवर्तित हो गई है।

कुमार संयुक्तचन्द्रजी (आत्मा) ने पूछा तो देहीमलजी निरुत्तर हो गये। उनके पास जवाब था ही कहाँ जो देते।

उन्हें अपनी गलती का अहसास हो चुका था, बुढ़ापे ने उन्हें घेर लिया था, सुन्दर दिखायी देनेवाला चेहरा पोपला हो चुका था। बत्तीसी गायब हो चुकी थी। सिर के बाल उड़ चुके थे तथा जो बचे थे वह सफेद हो चुके थे। हाथों एवं पावों पर झुर्रियाँ उभर आयी थीं। अन्दर की हड्डियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगीं थीं, आँखों से सफेद पदार्थ झरता रहता था। नाक से घिनावना पदार्थ बहता रहता था, बोलती बन्द हो चुकी थी; क्योंकि उनहें लकवा मार गया था। कभी-कभी तो मल-मूत्र भी बिस्तर पर पड़े-पड़े ही निकल जाया करते थे। कुल मिलाकर एक ऐसा घिनावना सच, जो सबके सामने आ चुका था।

संयुक्तचन्द्रजी की बात सुनकर एवं आत्मारामजी को देखकर देहीमलजी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। अन्दर ही अन्दर बोले– मुझे मेरी नहीं, बल्कि आपकी चिन्ता हो रही है, ऐसे बदबूदार पड़ौसी के साथ आप कैसे रह लेते हैं।

देहीमलजी के अभिप्राय को समझते हुए आतमारामजी बोले–

यद्यपि मुझे थोड़ी तकलीफ तो है परन्तु मैंने पड़ौसी को पड़ौसी एवं उसका ऐसा ही स्वभाव है ऐसा बरसों पहले जान लिया है, इसलिये मैं सन्तुष्ट हूँ तथा भविष्य में ऐसा उपाय करूँगा कि फिर से पड़ौसी का संयोग ही प्राप्त न हो।

आप भी ऐसा कीजिये न जैसा कुमार संयुक्तचन्द्रजी के आत्मा ने किया है तथा भविष्य में करने का निर्णय लिया है परमसुखी होने का तो एक मात्र यही उपाय है मुझे विश्वास है आप भी ऐसा ही उपाय करेंगे।

–जयन्तीलाल जैन, नौगामा

फल तो मिलता ही है

अयोध्या नगरी में क्षीरकदम्ब एक ब्राह्मण रहता था उसके पास नारद, पर्वत, वसु – ये तीन शिष्य पढ़ते थे। इनमें पर्वत उन्हीं का लड़का तथा वसु वहाँ के राजा का एवं नारद सेठ का लड़का था। पढ़ने के बाद वे सब अपने-अपने घर जाकर कार्यरत हो गये।

एक दिन पर्वत कथा कहते हुए होम करने के लिये अज नाम बकरे का बता रहा था। इतने में नारद का वहाँ से निकलना हुआ उसने कहा – पर्वत! ऐसा मत कहो, अज नाम तो जवा का है और जवा ही होम के काम आता है।

पर्वत ने सुनते ही कहा – मैं जो कह रहा हूँ वही सत्य है, आप मेरे बीच में मत बोलो।

नारद ने कहा – यह तेरा उपदेश पाप का मार्ग है, मेरी न माने तो अपना साथी वसु जो वर्तमान में राजपद पर स्थित है, उनसे निर्णय ले सकते हैं, तब उसके उत्तर देने के पहले ही उसकी शिष्य मण्डली कहने लगी। यह ठीक है – इसका निर्णय राजा के पास ही होगा और जो झूठा निकलेगा वह दंड का भी भागी होगा।

इधर, पर्वत अपनी माँ से आकर पूछता है कि माँ अज नाम बकरे का ही है, जो यज्ञों में होम के काम आता है। नहीं नहीं बेटा! अब कहा सो कहा, अब मत कहना। पर्वत कहता है कि इसका निर्णय राजा वसु देगा, क्योंकि मेरी और नारद की बात को सुनकर शिष्यमण्डली ने यही तय किया है। अब क्या होगा ? बुरा हुआ, हो सकता है राजा सत्यवान हैं, मौत की सजा दे देवें।

माँ की ममता देखो, जानते हुए भी राजा के पास पहुँचकर, हे वसु ! ''मेरी पहले की धरोहर है; ध्यान करो, मैंने तुम्हें पढ़ते समय गुरुजी से पीटते बचाया था, तब आपने राजपद पाने के बाद दक्षिणा देने की

बात कही थी। सो आप सत्यवादी हैं, आप मेरी दक्षिणा देने में न नहीं करेंगे। मुझे विश्वास है जल्दी हाँ कीजिए ! हाँ कीजिए !! कहकर दक्षिणा में 'पर्वत कहे सो सत्य' – ऐसा कहना माँग लिया।''

गुरानी के मोह में बिना कारण पूछें राजा ने हाँ भर दी और सभा में जानते हुए भी 'पर्वत कहे सो सत्य' कह दिया, फल यह हुआ कि मयसिंहासन के राजा वसु धरती में धस गया और वहाँ सेठजी की विजय हुई एवं पर्वत को अपमानित होना पड़ा। जिसके कारण वह तापसी बना तथा कुतप के योग से राक्षस होकर उसने वही खोटा मार्ग चलाकर स्वयं तो सप्तम नर्क चला ही गया। अन्य जीवों को भी कुमार्ग पर लगा कर अधोगति का पात्र बना दिया। **इस कथा से हमें शिक्षा मिलती है कि गलती को गलती मानकर छोड़ने का प्रयत्न करें, क्योंकि गलती को सही बताने वालों की खोटी गति ही होती है।**

भक्ति को व्यापार का नहीं, आत्मशुद्धि का साधन बनायें

एकबार वनवास के समय युधिष्ठिर ध्यान लगाये बैठे थे।

ध्यान से उठे तो एक व्यक्ति ने उनसे पूछा – धर्मराज आप भगवान का इतना ध्यान करते हैं, फिर भगवान से कहते क्यों नहीं कि वे तुम्हारे इन कष्टों को दूर कर दें। आप लोग कितने दिनों से वन-वन भटक रहे हैं।

धर्मराज ने कहा – हे भद्रपुरुष ! भगवान किसी का अच्छा-बुरा नहीं करते, क्योंकि वे तो परम-वीतरागी हैं। फिर वीतराग की भक्ति में भी अपने विषय-कषायों की पूर्ति के लिए सोदेबाजी करने पर वह भक्ति कहाँ रही, वह तो व्यापार हो गया।

भक्ति तो आत्मशुद्धि के लिए की जाती है।

कोयल, कौआ और लोमड़ी

एक पेड़ पर बैठा हुआ सुर सम्राट कौआ एक गीत गा रहा था –

गीतों में वो मेरे जादू, हर दिल खुशी से खिल जाये।
आवाज में मेरी वो तड़फन, पत्थर का दिल भी पिघल जाये।।
ऐसा क्या कुछ है जग में, जिसको हम न कर पायें।
आशमाँ के सितारे तोड़ सकें, रेती से तेल चुरा लायें।।

एक तो कानों को चुभनेवाली कर्कश भोंडी आवाज और उसपर भी उपहास जनक सर्वथा मिथ्या बात।

सामने के ही पेड़ पर बैठी हुई तत्त्वज्ञानी कोयल से न रहा गया। उड़ती हुई उस सुर सम्राट कौए के पास पहुँची और बोली –'तुम अपना यह बेसुरा राग अलापना बन्द करो । इसे सुनकर लोग तुम्हारी हंसी करेंगे।'

कोयल की बात कौए को चुभ गई। वह गला फाड़कर चिल्लाया– 'तुम मुझे टोकने वाली कौन होती हो?' तब कोयल बोली – 'बस तुम मुझे अपनी हितैषी ही समझ लो।'

'बड़ी आई ऐसी हितैषी बनने, यही कहो न कि मेरा सुन्दर गाना सुनकर तुम्हें ईर्ष्या होने लगी है। तुम मेरी बराबरी का सुन्दर गीत नहीं गा सकती।'– क्रोधित होते हुए कौआ बोला।

'महाशय ! आपको भ्रम हो गया है। आपकी आवाज तो सुन्दर है ही नहीं, परन्तु आपकी मान्यता भी ठीक नहीं है। आप आसमान के सितारे और रेत में से तेल प्राप्त नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि आत्मा परद्रव्य के कार्य बिल्कुल भी नहीं कर सकता। प्रत्येक कार्य अपने स्वयं की योग्यता से व स्वचतुष्टय से ही होते हैं। एक द्रव्य का कार्य दूसरा द्रव्य किंचित् भी नहीं कर सकता। क्या

तुम समझते हो कि अभी तक यह गाना गाने का कार्य तुम स्वयं कर रहे थे?

कोयल की बात सुनकर आश्चर्य चकित होते हुए कौआ चिल्लाया–'मैं नहीं गा रहा था तो क्या तुम गा रही थी? पागल कहीं की, कहाँ से चली आई यहाँ पर ? चली जाओ यहाँ से, मुझे ऐसे हितैषियों की जरूरत नहीं है।'

'ओ हो महाशय ! मैं भी नहीं गा रही थी और तुम भी नहीं गा रहे थे। वस्तुतः बात यह है कि यह गाने की क्रिया तो भाषा-वर्गणारूप पुद्गल की परिणति है, तुम तो मात्र गाने की इच्छपूर्वक अपने योग और उपयोग को ही कर रहे थे। इनके निमित्त से गीत के रूप में तो भाषा-वर्गणायें ही परिणमित हो रही थीं। और भाषा-वर्गणायें तो पुद्गल की ही अवस्था है। अरे ! तुम्हारा ये गीत तो क्या? तुम्हारा शरीर भी तो पुद्गल की ही अवस्था है। और तुम स्वयं पुद्गल तो हो नहीं, तुम तो ज्ञानस्वरूप चेतनतत्त्व हो और यह क्रिया पुद्गल से ही होती है इसीलिए वास्तव में गीत तुम नहीं गा रहे थे। सुनो ! कभी-कभी ऐसा भी तो होता है कि हम जैसा चाहें वैसा इस शरीर को नहीं कर पाते हैं, इसी से यह सिद्ध होता है कि शरीर की अवस्था हमारे आधीन नहीं है, बल्कि जिस काल में जैसी अवस्था होनी है, उसकी उसी काल में वही अवस्था स्वयं की योग्यता से ही होती है। समझे !

''बहुत समझ चुका। सीधी-सीधी यह क्यों नहीं कह देती कि येन-केन-प्रकारेण तुम मेरा गाना बन्द करा देना चाहती हो, ताकि स्वयं गाती रहो और लोगों की वाह-वाही लूटती रहो। अब तुम यहाँ से जा सकती हो – कौए ने आँखें निकालते हुए कहा और वह कौआ कोयल के उपदेश से बचने के उद्देश्य से वहाँ ये स्वयं उड़ गया।

वह सुर सम्राट कौआ उड़ता हुआ जा रहा था कि तभी उसकी दृष्टि रोटी के एक टुकड़े पर पड़ी, नीचे उतरकर रोटी का टुकड़ा उसने अपने मुँह में उठाया और फिर से उड़ चला। उड़ते-उड़ते दूर जंगल में जा पहुँचा और रोटी खाने के लिये एक पेड़ पर बैठ गया। संयोगवश उसी समय वह कोयल भी उसी दिशा में उड़ती हुई उस कौए के पास वाले दूसरे पेड़ पर आकर बैठ गई। तभी भोजन की तलाश में भटकती हुई लोमड़ी ने कौए के मुँह में रोटी देखी। वह चालाक और धूर्त तो थी ही। वह कौए से बोली – 'अहो सुर सम्राट कौए ! मैं तो कई दिनों से आपका गाना सुनने के लिए तरस रही थी। आखिर आज आपके दर्शन हो गए, मानो मेरे भाग्य ही खुल गये; शीघ्र ही कोई बढ़िया सा गीत सुनाओ न।

इसी बीच कौए की नजर सामने बैठी हुयी कोयल पर पड़ चुकी थी, वह भी उधर ही देख रही थी। अपनी ढ़ेर सारी प्रशंसा सुनकर कौआ फूला नहीं समा रहा था। उसकी इतनी प्रशंसा और वह भी उसकी आवाज की निंदक कोयल के सामने। कौए के तो मानो भाग्य ही खुल गए। वह अपनी सुध-बुध ही खो बैठा और एक विचित्र-सी मुस्कराहट बिखेरते हुए कोयल की तरफ देखने लगा। मानो मन ही मन कह रहा हो 'देखा तुमने! यहाँ मेरी आवाज के प्रशंसक कितने हैं ? क्या तुम्हारे गीत की भी कोई ऐसी प्रशंसा करता है?

पैनी पकड़ वाली तत्त्व सम्राज्ञी कोयल शीघ्र ही समझ गई कि लोमड़ी कौए को मूर्ख बनाना चाहती है, अतएव वह जोर से चिल्लायी– 'कौए भाई ! तुम गाना नहीं गाना यह तुम्हारी झूठी प्रशंसा करके तुम्हारी रोटी छीनना चाहती है।'

परन्तु कौए महाशय तो कोयल की पूरी बात सुनने से पहले ही गाने लगे, जैसे ही कौए ने गाने के लिए मुँह खोला रोटी का टुकड़ा

जमीन पर गिर गया। रोटी का टुकड़ा जमीन पर गिरते ही लोमड़ी उसे उठाकर दूर जंगल में भाग गई।

अब तो सुर सम्राट का चेहरा देखने लायक था। तत्त्व सम्राज्ञी उसकी तरफ देखते हुए बोली– 'यद्यपि तुम्हारी इच्छा रोटी पाने की तो बहुत थी, परन्तु रोटी की योग्यता तुम्हारे पेट के अन्दर तक पहुँचने की होती, तभी तो वह तुम्हारे पेट में पहुँच पाती। गीत गाने की इच्छा तो तुम्हारी बहुत थी पर शब्दों की योग्यता गीतरूप से परिणमित होने की होती तभी तो तुम गीत गा पाते न ! खैर ! यह बताओ कि क्या अब भी तुम इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हो कि 'प्रत्येक द्रव्य की परिणति स्वतंत्र है।'

सुर सम्राट के पास तत्त्व सम्राज्ञी की बातों का कोई जवाब नहीं था। कुछ देर तक तो वह गुमसुम सा बैठा-बैठा उस कोयल के कहने को न मानने पर पछताता रहा। बाद में कोयल के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ वहाँ से उड़ चला। तत्त्व सम्राज्ञी कोयल ने भी अपनी राह पकड़ी।

– जयन्तीलाल जैन, नौगामा

अन्तर्दृष्टि करूँ तो तत्त्व मिले, बाह्यदृष्टि होने पर तो दु:ख ही मिलेगा। पहले अपने आत्मतत्त्व पर दया करूँ, अपने को संभालूँ। और की तो बात जाने दो, ममतामयी माँ की गोद में पड़ा हुआ बालक भी काल का ग्रास हो जाता है और माँ उसको बचाने में असमर्थ होती है।

तृष्णा के बढ़ाव में दु:ख है और घटाव में सुख। इच्छा से चिन्ता उत्पन्न होती है और जहाँ चिन्ता हुई क्लेश अनिवार्य है। 'यह वस्तु मेरी है या वह मेरी थी' दु:ख तो मात्र इस विकल्प में है, परपदार्थ में नहीं। वस्तु से मोह हटा लो तो उसको न पाने अथवा खोने का दुख नहीं होगा। ●

किस्मत का चमत्कार

मणिचूड़ और चन्द्रचूड़ दो देवता थे। दोनों में परस्पर अच्छा प्रेम था। एक दिन शक्ति की बात चली।

मणिचूड़ ने कहा– 'सुर शक्ति सदा किस्मत के पीछे चलती है।'

चन्द्रचूड़ ने कहा– 'मित्र तू गल्ती में है। देव-शक्ति चाहे जो कर सकती है।'

अब इसकी परीक्षा करने के लिए दोनों मनुष्य लोक में आये।

मणिचूड़ बोला– 'ये जो तीन प्राणी खेत जा रहे हैं, इनको धनी बनाओ।' चन्द्रचूड़ ने उन तीनों के आगे स्वर्ण और रत्न के ढ़ेर लगा दिए। इधर उन तीनों व्यक्तियों ने सोचा यदि कभी अंधे हो जायेंगे तो कैसे चलेंगे? इसका अभ्यास करते हैं। तीनों आंखें बंद करके चलने लगे। स्वर्ण और रत्न के ढ़ेर पीछे रह गए।

इस असफलता के बाद देव ने सोचा अब वरदान देकर के सुखी करूँगा। दोनों तालाब की पाल पर बैठ गए। इतने में एक जाटनी वहाँ से निकली और उसने पूछा– 'तुम कौन हो? उन्होंने कहा हम सिद्ध पुरुष हैं। चाहे जो वरदान मांग लो हम देने को तैयार हैं।' जाटनी ने रूप मांगा। वह देवी-सी रूपवती बन खेत में आ गई। जाट देखते ही चमका और बोला– 'हे देवी माँ ! कहाँ से आई हो?' 'मैं तो पेमा की माँ हूँ।' यों कहकर जाटनी ने सारी बात बता दी।

जाट लाल पीला होकर बोला–'घर में तो खाने के लिए अनाज के लाले पड़ रहे हैं और पिशाचनी को सुन्दर रूप अच्छा लगा।' वह दौड़ा-दौड़ा तालाब पर गया और उन सिद्ध पुरुषों से वर मांगा–'मेरी स्त्री को गधी बना दो।'

देव के वरदान देते ही वह बिचारी गधी बन गई। वह जोर-जोर से रेंकती हुई खेत में इधर-उधर दौड़ने लगी। जाट गुस्से में लाल

हो उसे लाठी से पीटता हुआ अनर्गल गालियां निकालने लगा–' दुष्टा! तुझे रूप चाहिए, किन्तु आज तुझे मारे बिना नहीं छोड़ूंगा।'

घर का सारा काम बन्द हो गया। सबके मन में अशान्ति के बादल छा गये। अन्त में जाट का पुत्र पेमा दौड़ा-दौड़ा सिद्ध पुरुष के पास गया और पूछा–'क्या मुझे भी वरदान मिलेगा? देवों ने कहा–'हाँ जो भी तुम मांगोगे अवश्य मिलेगा। 'उसने कहा– 'महाराज ! न मुझे धन चाहिए न कुछ और, बस गधी को वापिस मेरी माँ बना दो।' देव ने तत्काल उस गधी को फिर से ज्यों की त्यों औरत बना दिया।

मणिचूड़ हंसकर बोला–'मित्र! भाग्य बिना इन तीनों को तू कुछ नहीं दे पाया। अब चलो भाग्यवान के पास चलते हैं। दोनों एक नगर में आये। सिद्ध पुरुषों का नाम सुनकर एक अंधा आया और बोला–'कृपया मुझे वरदान दीजिए।' देवों ने कहा – 'तुम जो चाहो एक वर मांग लो।' अंधे ने कहा– हे दयालु! बस मुझे एक ही वरदान चाहिए है। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि स्वर्ण के थाल में पकवान खाते हुए पोते को देखूँ।'

यह सुनते ही उस देव को मानना पड़ा कि वास्तव में सब किस्मत का चमत्कार है। किस्मत के बिना एक कोड़ी भी कोई किसी को नहीं दे सकता। देव द्वारा अंधे की आशा पूर्ण करते ही उसकी आँखें खुल गईं। धन से भण्डार भर गये और क्रमशः समय आने पर पोता भी हो गया। मनुष्य तो क्या देवता भी तभी सहयोग दे पाते हैं, जब हमारे पुण्य का उदय हो। पुण्योदय तभी आता है जब हमने पूर्व में पुण्य परिणाम करके पुण्यबंध किया हो। पुण्योदय/भाग्य/किस्मत के बिना कोई किसी को धनवान नहीं बना सकता।

किस्मत है जब मनुज की, तब देते सब योग।
बिना भाग्य वह देव भी कर न सके सहयोग।।

विद्युच्चर चोर

(परिवर्तन)

(समय : अर्धरात्रि, एक चोर का जम्बूस्वामी के घर अपने साथियों के साथ घुसना)

विद्युच्चर चोर- आ जाओ, आ जाओ धीरे...धीरे.. सी..सी...। अँधेरी रात है। आज इस घर में चार-चार दुल्हनें आई हैं बहुत माल मिलेगा। सावधनी से सी...सी...। साथियो ! तुम सब यहीं रुको। मैं अन्दर का हाल देखकर आता हूँ। अबतक सब सो चुके होंगे। (नेपथ्य में से जम्बूस्वामी और नव वधुओं की चर्चा)

नववधु- हे स्वामी ! हममें ऐसी क्या कमी है, जो आप हमें नजरें उठाकर भी नहीं देखना चाहते ? हे नाथ ! आप ही तो अब हमारे आश्रयदाता हैं। आप हम पर प्रसन्न होकर हमें स्वीकार कीजिए।

हे स्वामी ! बसन्त के समान नव यौवन, कमल के समान यह रूप, पुण्य उदय से प्राप्त ये लोकोत्तम भोग आपके चरणों में हैं, फिर बिलम्ब कैसा? इस भोग के काल में यह विरक्ति आपके चेहरे पर अच्छी नहीं लग रही है। आपके इस वैराग्य भाव से हमें बहुत डर लग रहा है। कृपया हमारा भय दूर कर हमें कृतार्थ कीजिए।

जम्बूस्वामी- (नेपथ्य से) हे माताओ ! मैंने कभी तुम्हें पत्नी के रूप में नहीं देखा। मुझे आपको दुःखी करने का रंचमात्र भी अभिप्राय नहीं है, पर मैं क्या करूँ? मुझे ये राग की बातें शूल के समान चुभती हैं। जिसे तुम भोग कहती हो, वह मुझे एक घृणित रोग दिखाई देता है। यह विवाह का भार मुझ पर अनावश्यक रूप से डाला गया है। मुझे तो शरीररूपी परिग्रह ही सहन नहीं होता तो फिर आप लोगों का परीग्रह और तीनों लोक से भी भारी यह घर जंजाल मेरी सामर्थ्य से बाहर है।

हे देवियो ! यह राग कथा करके मुझ पर उपसर्ग मत करो। मुझे

क्षमा करो, अब तो मैं निर्णय कर चुका हूँ कि प्रातःकाल होते ही मैं जैनेश्वरी दीक्षा धारण करने के लिए वन में प्रस्थान करूँगा। (इधर चोर के भावों में परिवर्तन)

विद्युच्चर चोर- ओ हो धिक्कार है मुझे ! मैं किस महापुरुष के घर चोरी करने आ गया। अरे ! मैं जिस धनादि सम्पदा के लिए चोरी जैसा पाप करने आया हूँ, यह महापुरुष तो उसे अनर्थ की जड़ समझकर छोड़ने जा रहा है। अहो धन्य है यह महापुरुष ! जो इस पुण्य के वैभव को ठोकर मारकर दिगम्बर दशा अंगीकार करेगा।

किसी ने सही ही कहा है – 'पुण्य के फल में जीव अभिमानी और पापी हो जाता है, उसके फल में नीच गति प्राप्त होती है, अतः ऐसा पुण्य का उदय मेरे दुश्मन को भी नहीं होवे।' इसलिए तो यह सौभाग्यशाली मुक्तिरूपी वधु को वरने के लिए तैयार हुए हैं। अहो, अब तो मेरे पाप का प्रायश्चित करने का समय आ गया है।

हाँ, हाँ ! समाधान है इसका। प्रातःकाल होते ही इस महापुरुष के साथ मैं भी दीक्षा अंगीकार करूँगा। यही मेरे पापों का उत्तम प्रायश्चित होगा।

भोजन

पहले दर्शन बाद में भोजन, पहले पूजन बाद में भोजन।
पहले स्वाध्याय बाद में भोजन, पहले दान बाद में भोजन।
संयम सहित करें हम भोजन, तप वृद्धि करने को भोजन।
आसक्ति तज करें सु-भोजन, रह कर मौन करें हम भोजन।
द्रव्य शुद्ध हो क्षेत्र शुद्ध हो, काल शुद्ध हो भाव शुद्ध हो।
शुद्धि सहित करें हम भोजन, शान्त चित्त हो करें सु-भोजन।
नहीं हमारा ये जड़ भोजन, करें ज्ञानमय नित ही भोजन।

– ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

अपराध-बोध

यह जगह-जगह लिख रखा है – 'घड़े का कर्ता कुम्हार नहीं है, मकान को बनाने वाला कारीगर नहीं है, रोटी को बनाने वाली औरत नहीं है, हाथ को हिलानेवाला मनुष्य का आत्मा नहीं है, यह सब तो पुद्गल की अवस्थायें हैं और इन सब अवस्थाओं का कर्ता पुद्गल द्रव्य है, जीव नहीं है।'... हूं ....यह भी कोई बात हुई।

अपने सिर को एक विशिष्ट-सा झटका देते हुए तथा अपनी हथेली को एक विशिष्ट मुद्रा में घुमाते हुए मनोज बोला। अपनी बात को जारी रखते हुए वह आगे बोले जा रहा था – यह क्या रोटी अपने-आप बन जाती है ? कुछ भी मत करो और चुपचाप बैठे रहो, क्या रोटी आ जायेगी अपने आप मुँह में ? मकान को बनानेवाला यदि कारीगर नहीं है, तब तो मकान अपने आप बन जाता होगा ? क्या बुद्धू बनाने की बातें हैं, कहते हैं खाने-पीने की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है, तो क्या शरीर खाता-पीता है ? स्वच्छन्द होने के लिए क्या-क्या सिद्धान्त घड़ रखे हैं इन लोगों ने।

सामने खटिया पर लेटे वृद्ध एवं बीमार नानाजी को सम्बोधित करते हुए मनोज ने कहा– देखो नानाजी! खाओ-पिओ और मौज करो, क्या इस तरह हो जायेगा अपने आप मोक्ष ? यही तो कहना है उन लोगों का, जगह-जगह एक ही बात – व्रत, तप आदि सभी शरीर की (जड़ की) क्रियायें हैं, इन क्रियाओं का कर्ता आत्मा नहीं है। हः हः हः ......सस्ते में मोक्ष चाहते हैं वे लोग। हूँ ....जहाँ देखो वहीं, यही बातें लिख मारी हैं, यह भी कोई साहित्य है?

नानाजी! चाहे भले ही आपको बुरा लगे, पर हमें तो ऐसा साहित्य पसन्द नहीं है। हमने तो ऐसे साहित्य के टुकड़े-टुकड़े कर फैंकने का संकल्प कर लिया है।

चुप रह नालायक कहीं का, पापी। पलंग पर लेटे-लेटे नानाजी ने आवेश में आकर उठने की असफल कोशिश करते हुए चिल्लाकर कहा।

क्रोध के मारे उनकी आँखें लाल हो गयीं तथा मुँह से सफेद-सफेद झाग निकलने लगे। कंठ सूख गया, फिर भी आवाज में उनका चिल्लाना जारी रहा – तो तूने पाप कर ही डाला, जिस पाप की सजा मैं आज तक भुगत रहा हूँ।

फिर अश्रूपूरित नेत्रों से निहारते हुए बोले – बेटा ! तुमने नादानी में नासमझी में एक बहुत ही बड़ा अपराध कर डाला है। शरीर की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है– यह बात पूर्णतः सत्य है। यह आत्मा कभी भी परद्रव्य की क्रिया नहीं कर सकता– यही बात पूर्ण सत्य है बेटा। नानाजी अपनी बात सुनाते-सुनाते काफी भावुक हो उठे थे। अपने वृद्ध और अपाहिज नाना की बात सुनकर मनोज की आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गईं। वह सहम सा गया। वह तो अब तक ऐसा समझ रहा था कि साहित्य को नष्ट करके उसने एक बहुत बड़ी बाजी अपने हाथ मार ली है। बहुत बड़ा पुण्य का कार्य सम्पन्न कर लिया है; पर यहाँ तो उसे इस कृत्य के लिए नानाजी ही पापी ठहरा रहे थे, जो स्वयं भी एक दिन इसी के पक्ष में थे।

इन्हें क्या हो गया ? – यह सोचते-सोचते उसका जोश समाप्त हो गया। वह तो समझ रहा था कि मेरा करिश्मा सुनकर नानाजी मेरी प्रशंसा करेंगे, पर यहाँ तो बात उल्टी ही निकली। अब उससे आगे कुछ कहते ही नहीं बन पा रहा था। वह सीधा दिल्ली से यहाँ बम्बई में अपने नानाजी से मिलने आया था, क्योंकि उसके नानाजी लम्बे समय से लकवे की बीमारी से पीड़ित थे। आवश्यक हाल-चाल पूछने के बाद ही उसने अपना करिश्मा अपने नानाजी को सुनाना शुरु किया था, जिसे सुनकर उसके नानाजी बिफर पड़े थे।

उन्होंने कहा – ओ, हो....बेटा ! यह तूने क्या किया? कई दिन पहले मैंने भी अपनी ना समझी और दूसरों के बहकावे में आकर ऐसे ही सत्साहित्य को नष्ट करने का भयंकर पाप किया था – यह कहते-कहते वे बेचैन हो गये, उनकी वाणी में पश्चाताप की पीड़ा स्पष्टरूप से झलक रही थी। वे आगे बोले – बेटा! उस समय मेरे मन मस्तिष्क में भी ऐसे ही कुतर्क उठा करते थे। यदि कुम्हार न हो तो क्या घड़ा अपने-आप बन जायेगा? पर, बेटा ! यह मेरी नादानी थी। उस समय मैं इस बात को कहाँ जानता था कि ये तो वस्तु के स्वरूप को ज्यों का त्यों बतानेवाली अनादिकाल से चली आ रही तीर्थंकर भगवन्तों की जिनवाणी की बातें हैं। ये तो ऐसी बातें हैं, जिनको समझ कर सच्चे हृदय से स्वीकार करने पर अनादिकाल से चला आ रह जन्म-मरण का अभिशाप समाप्त हो जाता है।

नानाजी एक लम्बी सांस खींचते हुए कुछ देर तक रुककर फिर बोले – बेटा ! उस समय तो मैं भी तुम्हारी ही तरह बड़ी अकड़ और जोश के साथ कहा करता था कि यह इन्सान क्या नहीं कर सकता? चाहे जो कुछ कर सकता है, आसमान से तारे तोड़कर ला सकता है, यह चाहे तो देखते ही धन-धान्य के ढ़ेर लगा सकता है; परन्तु बेटा ! यह सब मेरा भ्रम था और मेरा यह भ्रम उस समय टूटा, जब अचानक ही मेरा यह शरीर लकवे से ग्रस्त हो गया और मैं जहाँ खड़ा था वहीं पर धम्म से गिर पड़ा। उस समय मैं अपने शरीर को टस से मस नहीं कर सकता था।

नानाजी अपनी कहानी सुनाते-सुनाते सचमुच ही उस घटना काल में पहुँच चुके थे। क्षणभर के लिए इसी से उनके चेहरे पर पीड़ा के भाव उभर आये थे। दुःखभरी आवाज में वे पुनः बोले – उन दिनों मेरी अपनी आवाज भी लड़खड़ाने लगी थी, मैं अपनी सहायता के

लिए दूसरों को पुकारना चाहता था; लेकिन मुझसे बोला ही नहीं जा रहा था।

यह कहते-कहते नानाजी कुछ देर के लिए चुप हो गये, मानों वे अपने पूर्वकाल की स्मृति में खो गये हों। थोड़े संयत होते हुए वे पुनः बोले – और बेटा! उन्हीं दिनों से मुझे धीरे-धीरे यह विश्वास होने लगा कि वास्तव में यह आत्मा शरीर से लगाकर अन्य जितने भी परद्रव्य हैं, उन परद्रव्यों की क्रियाओं का कर्ता नहीं है। **यह आत्मा जानने के सिवाय कुछ भी नहीं कर सकता, मात्र परद्रव्यों की क्रियाओं को करने का भाव कर सकता है।** जब इसकी इच्छा के अनुकूल परद्रव्यों की क्रियायें स्वयमेव सम्पन्न हो जाती हैं, तब अज्ञानी जीव उन द्रव्यों की क्रियाओं को करने का अभिमान करने लगता है।

नानाजी अपने अनुभव की बात अपने नाती मनोज को सुनाने में तल्लीन थे और मनोज आश्चर्यमिश्रित जिज्ञासा पूर्वक सुनने में तल्लीन था। इसी बीच एक छह-सात वर्षीय लड़की ने चाय प्याला हाथ में लिए कमरे में प्रवेश किया। लड़की मनोज के सामने चाय का प्याला रखकर चली गयी, पर उन दोनों में से किसी ने चाय की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। नानाजी अपनी बात लगातार जारी रखते हुए कहे जा रहे थे –

बेटा मुझे लकवा तो हुआ; पर मेरे लिए तो यह लकवा वरदान बन गया है, मेरे लिए तो यह लकवा मेरा मित्र साबित हुआ; क्योंकि इससे चलना-फिरना तक जब बन्द हो गया तो दुकान आना-जाना भी सहज छूट गया और स्वाध्याय को सहज समय मिल गया। मैंने समयसार आदि ग्रन्थों का अनेक बार स्वाध्याय सुना एवं यथासम्भव स्वयं भी किया। इससे ही मुझे अपनी भूल का भान हुआ। यदि लकवा

न हुआ होता तो क्या पता, पर पदार्थों में कर्तृत्वबुद्धि का अभिमान टूट पाता या नहीं। मेरे शरीर में तो लकवा हुआ, पर मेरी आत्मा में मिथ्यात्वरूपी लकवे का अभाव हो गया। पर कर्तृत्व का अभिमान टूटकर ज्ञातृत्वभाव प्रगट हो गया।

नानाजी ! अब मैं आपको वचन देता हूँ कि अब मुझसे इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी और मैं नियमित स्वाध्याय भी करूँगा। साथ ही साथ यह प्रण करता हूँ कि जबतक सैकड़ों की संख्या में जिनवाणी को प्रकाशित करवाकर घर-घर नहीं पहुँचा दूँगा, तबतक चैन की सांस नहीं लूँगा। मनोज नाना के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए पूर्ण दृढ़ता के स्वर में बोला।

मनोज की बात सुनकर नानाजी खुश हो गये। झुर्रियों से भरा उनका चेहरा खुशी से खिल उठा। आँखों में खुशी की चमक फैल गई। ऐसा लग रहा था जैसे अपने नाती से घर-घर जिनवाणी पहुँचाने का वचन प्राप्त कर नानाजी ने अपने आपको उस बोझ से हल्का कर लिया हो, जो पूर्व में उनने जिनवाणी नष्ट करके अपने सिर लिया था। अब वे अपने आपको काफी हल्का महसूस कर रहे थे।

– जयन्तीलाल जैन, नौगामा

वे ही सच्चे जैनी

प्रभु दर्शन नित करते, रात्रि भोजन तजते।
पियें छानकर पानी, सुनें सदा जिनवाणी॥
कभी अभक्ष्य न खाते, जीवदया चित लाते।
सप्त व्यसन के त्यागी, संयम में अनुरागी॥
वस्तु स्वरूप समझते, शुद्धातम को भजते।
जाग्रत प्रज्ञा छैनी, वे ही सच्चे जैनी॥

– ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

उस समय तेरा कौन ?

भाग्यवान मानव ! अतुल शरीर बल, अधिकार बल, परिवार बल आदि अनेक बल मिलने से मदमस्त होकर फिर रहा है, किसी की सीख सुनने को तैयार नहीं है, परमात्मा नाम अच्छा नहीं लगता, सत्पुरुषों की संगति नहीं करता, जीवन के विपरीत मार्ग पर चढ़ रहा है फिर भी अपने को बुद्धिशाली मानता है, परलोक को भूलकर इसलोक में ही रागरंग हेतु सर्व उद्यम कर रहा है। आत्मा के विचार को लेशमात्र हृदय में नहीं लाता, धर्म की बातों को व्यर्थ की मानकर, धर्माराधन करने वालों को पागल समझकर उस ओर रंचमात्र अंतरंग प्रेम प्रदर्शित नहीं करता। मानव जीवन की सफलता के लिए सत्पुरुष जो मार्ग बतलाते हैं, उससे विपरीतमार्ग पर चल कर भी अपने को बुद्धिमान मानता है।

परन्तु मैं तुझसे पूछता हूँ कि – नाशवान शरीर में अनेक रोगों का आक्रमण होगा, स्नेहियों के सर्व उपचार सफल नहीं होंगे, बड़े-बड़े डिग्रीधारी डॉक्टर और हकीम इलाज करने पर भी निष्फल होंगे, निकट के सगे स्नेही तेरी ओर उदास चेहरों से देखते हुए आँसू बहायेंगे। **– उस समय तेरा कौन?**

अन्तर में बेचैनी होगी, श्वास-उच्छ्वास की गति अनियमित होगी, किसी अकथनीय दशा का अनुभव होता होगा, चारों ओर से निराशा के स्वर सुनाई देते होंगे, धारणा धूल में मिल रही होगी, मन के मनोरथ मन में ही मर रहे होंगे **– उस समय तेरा कौन?**

पाप की परवाह किये बिना, अनेक बुरे काम करके कमाये हुए पैसे, मकान, बाग-बगीचे, मोटरें , मिल, जीन, प्रेस आदि मनपसंद वस्तुयें हमेशा के लिए छोड़ देने का समय अचानक आ जायेगा। **– उस समय तेरा कौन?**

माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि के आनन्ददायक सहवास को अनिच्छा से छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

– उस समय तेरा कौन?

मान या न मान, परन्तु तीन शत्रु तेरे पीछे-पीछे फिरते रहते हैं। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु – इन तीन में से एक के चंगुल में आ गया तो अभिमान का चूरा हो जायेगा, यहाँ का सारा परिश्रम व्यर्थ जायेगा; इसलिए अंतर से विचार **– उस समय तेरा कौन?**

बुद्धि के भण्डार ! इन सबका उत्तर तुझे मोह की परवशता के कारण न सूझे तो मैं कहता हूँ; उस समय तेरा साथी एक धर्म है, अन्य कोई शरण नहीं दे सकेगा। जीवन को उज्ज्वल बनाये, रोग दशा में आर्तध्यान भुलाये, वृद्धावस्था में तिरस्कृत न होना पड़े और समाधि पूर्वक मरण हो सके, यह सर्व शक्ति धर्म में है। अभी से जाग तभी सवेरा मानकर उत्तम प्रकार के धर्म की आराधना करना वह अति हितकर है।

धर्म सर्वत्र रक्षक है – ऐसी यथार्थ रुचि हो जाए तो उसके प्रति अरुचि या असावधानी न रहे।

आत्म विकास के लिए धर्म की आराधना जीवन के प्रत्येक क्षण में आवश्यक है। जगत के सर्व साधनों की अपेक्षा धर्म के साधन मूल्यवान है। पूर्व भव में किये हुए पुण्य के प्रताप से यहाँ सत्संग की प्राप्ति हुई है। अब आराधना के बिना जीवन व्यतीत करेगा तो संसार की अनजान यात्रा कठिनाई भरी हो जायेगी।

चित्त से चेतकर लेकर अपनी उत्तम कुल मर्यादा सुरक्षित रखकर धर्माराधन के लिए तैयार हो जा, फिर कोई चिन्ता नहीं है। संसार के सर्व जीव परमशान्ति अनुभवो !!! **– अन्तर-शोधन से साभार**

देशभूषण और कुलभूषण (ज्ञान में ही त्याग)

(दोनों भाई रथ पर सवार हैं, नगर यात्रा का आनंद ले रहे हैं)

देशभूषण - देख भाई देख ! इस सुन्दर महल के झरोखे से एक अप्सरा के समान कन्या अपलक नयनों से मुझे झांक रही है। लगता है, इसका अवतार मेरे लिए ही हुआ है, अतः इस कन्या से मैं शीघ्र ही विवाह करूँगा।

कुलभूषण - हे भ्राता ! तुम्हें भ्रम हुआ है। सच तो यह है कि यह कन्या मुझे ही देख रही है, अतः उससे विवाह करने का हकदार मैं ही हूँ।

देशभूषण- चुप रहो भाई! तुम्हें यह बोलना शोभा नहीं देता। इस कन्या का अधिकारी मैं ही हूँ।

कुलभूषण- विवाद करने से कोई हल नहीं, इसका निर्णय तलवार करेगी कि कौन उस कन्या से विवाह करेगा? और सुनो, इससे हमारी युद्धकला की भी परीक्षा हो जायेगी।

देशभूषण- तो आ जाओ मैदान में। (दोनों में भीषण युद्ध होने लगता है)

राजपुरोहित- हे युवराजो! इस अनर्थ को रोको। (अचानक दोनों का रुकना) विद्या अभ्यास के बाद भी अज्ञानरूपी पिशाच ने तुमको ग्रसित किया है - यह आश्चर्य है। ग्रन्थों में सही कहा है यदि विशुद्धि न हो और ज्ञान बढ़ जाये तो वह ज्ञान मात्र अधोगति का ही कारण होता है। क्या तुम्हारी बुद्धि हेय-उपादेय के विवेक से शून्य हो गई है या तुम जड़ हो गए हो अथवा तुम कोई सातवें द्रव्य हो जिसका नाम पिशाच है। क्षमा चाहता हूँ युवराजो! मैं तुम्हारे पिताश्री का नमक खाता हूँ और आज उसी नमक का ऋण उतार रहा हूँ।

देशभूषण- हे राजपुरोहित ! क्या कहना चाहते हो? साफ-साफ कहो।

राजपुरोहित- सुनो युवराजो ! जिस कन्या के लिए तुम दोनों सहोदर आपस में रक्त बहाने को तैयार हो, वह कोई और नहीं, तुम्हारी ही सगी बहिन है।

क्या कहा ? (दोनों का मूर्छित होकर गिरना। पुनः सचेत होकर)

देशभूषण- धिक्कार है हमारी अज्ञानता को ! धिक्कार है हमारी मूढ़ता को। अरे धिक्कार है हमारे इस विषय-कषाय को जो सगी बहिन को भी न पहचान सका। प्राणी इस काम कषाय के वशीभूत होकर क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालता। जगत में जितने भी जीव हैं, उनसे हमारे सभी तरह के नाते रिश्ते हो चुके हैं। ये माँ-बहिन, माता-पिता, और पति-पत्नी आदि के रिश्ते मोह के वशीभूत जीव को संसार में डुबोने वाले हैं। अब तो परमब्रह्मरूप निज भगवान आत्मा की ही शरण जाना चाहिए।

कुलभूषण - हाँ भाई ! लेकिन अब

इन कलंकित नेत्रों से किस तरह बहिन के दर्शन करेंगे। लगता है – इस प्रसंग ने हमारे मुक्तिवधु के दर्शन के द्वार खोल दिए हैं।

देशभूषण- हाँ भाई! चलो शीघ्र चलो! सारथी ! रथ को वन की तरफ मोड़ लो, अब तो मुनिधर्म अंगीकार करके ही आत्मा का कल्याण होगा।

कितना सुन्दर, कितना सुखमय, अहो सहज जिनपंथ है।
धन्य धन्य स्वाधीन निराकुल, मार्ग परम निर्ग्रन्थ है॥
श्री सर्वज्ञ प्रणेता जिसके, धर्म पिता अति उपकारी।
तत्त्वों का शुभ मर्म बताती, माँ जिनवाणी हितकारी।
अंगुली पकड़ सिखाते चलना, ज्ञानी गुरु निर्ग्रन्थ हैं॥
– ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

अब समझले तो अच्छा !

हे चिदानन्दघन आत्मन् ! मोह की मदिरा से मस्त बनकर मूर्खतापूर्ण कार्य बहुत किये। – **अब समझले तो अच्छा**

परवस्तु को अपना माना, अपनी अनुपम वस्तु को भूला, विपरीत परिश्रम बहुत किया, अपनी उलटी दशा के कारण खूब दुःख सहन करना पड़े। – **अब समझले तो अच्छा।**

इन्द्रियों का दास बना, मन को खुला छोड़ा, व्यसनों से प्यार किया, मौजमजा में पड़ा रहा, सच्चे सुख को शोधने का सहज भी उद्यम नहीं किया, पग-पग पर पराधीन बना। – **अब समझले तो अच्छा।**

बचपन में माता, युवावस्था में पत्नी, बुढ़ापे में बच्चों की याद आयी, परमात्मा का स्मरण नहीं किया, आत्मा को खोजने की अन्तर्दृष्टि नहीं खोली। बहुत भूला, बड़ा हैरान हुआ। पामर जीव ! – **अब समझले तो अच्छा।**

उन्माद को हटा, विपरीतता को छोड़, प्रभु से प्रेम कर, सत्समागम को शोध, अज्ञान से डर, सदाचार का सेवन कर, तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर ले, आत्म रसिक बन जा। बार-बार सचेत करता हूँ कि हे प्राणी! – **अब समझ ले तो अच्छा।**

मृत्यु निश्चित है, काल की गति का पता नहीं, पूर्व पुण्य से यहाँ आनन्द की लहर है, पुण्य पूरा हो जायेगा तब धक्का लगेगा, छोड़कर मर जाना निश्चित है तथापि नाशवान वस्तुओं के लिये तेरा कितना उद्यम ? और आत्मा के लिये कुछ नहीं ? चेतन ! **अब समझ ले तो अच्छा।**

अमूल्य मानव शरीर मिला, परमात्मा के निकट पहुँचने के पर्याप्त साधन प्राप्त हुए, तथापि अपनी अज्ञान दशा के कारण संसार में भटक

रहा है, प्रभु से दूर-दूर होता जा रहा है। अनन्तकाल से दुःख के गर्त में डूब रहा है, दुःख के मार्ग से हटकर, परम शान्ति के मार्ग से हटकर, परम शान्ति के मार्ग पर आने के लिये हे जीव ! – **अब समझ ले तो अच्छा।**

धर्म के बिना त्रिकाल में सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होगी। सारा जीवन धर्म की सम्पूर्ण आराधना में लगाने को कटिबद्ध हो जा। कल्याण की साधना तेरे हाथ की ही बात है। आराधक भाव बढ़ाकर परम मंगलमय बनने को तैयार हो जा। आत्मतारक धर्मानुष्ठान उत्तम आशय के साथ करके क्रमशः उच्चदशा को प्राप्त करेगा। सदा शान्ति हो।

– अन्तर-शोधन से साभार

भाग्य और पुरुषार्थ

एक सज्जन बहुत अधिक गरीब एवं दुखी थे। उनसे धर्मसाधन की बात करते तो कह देते कि इस समय भाग्य साथ नहीं दे रहा है, क्या करूँ ? कुछ दिनों में भाग्य ने पलटा खाया और वे लखपति बन बैठे।

एक दिन उनसे मिलन हो गया तो कहने लगे – पण्डितजी बड़े परिश्रम से धन कमाया है।

मैंने पूछा – जब गरीब थे, तब तो भाग्य को दोष देते थे और आज पुरुषार्थ की डींग मार रहे हो। या तो भाग्य को ही मानो या पुरुषार्थ को। ऐसा क्यों करते हो कि "मीठ-मीठा गप, कड़ुवा-कड़ुवा थू" १० वर्ष बाद वे फिर पूर्व स्थिति पर आ गये।

मैंने कहा – अब पुरुषार्थ कहाँ गया ? वे कहने लगे – यह तो सब भाग्याधीन है।

मैंने समझाया – **बाह्य सामग्री भाग्य से मिलती है। पुरुषार्थ अपने भावों में हो सकता है, दूसरी वस्तु में पुरुषार्थ नहीं चलता है।**

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३४ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(बाईस परीषह एक संवाद के रूप में)

(भाग - २६)

लेखक :

पण्डित रमेशचन्द शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – ४९१ ८८१

मो. ९४२४१११४८८

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. ८६१९९७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ, कुल : ३१०० प्रतियाँ
दशलक्षण पर्व, (सितम्बर, २०२४)

न्यौछावर : 30 रुपये मात्र

☙ अनुक्रमणिका ☙

❖ अपनी बात	9
❖ मंगलाचरण	13
❖ 22 परीषह : सामान्य परिचय	15
1. क्षुधा-परीषहजय	23
2. तृषा परीषहजय	23
3. शीत परीषहजय	33
4. उष्ण परीषहजय	33
5. दंशमशक-परीषहजय	42
6. नग्न-परीषहजय	51
7. अरति परीषहजय	57
8. स्त्री परीषहजय	63
09. चर्या परीषहजय	71
10. शय्या परीषहजय	71
11. निषद्या परीषहजय	71
12. आक्रोश परीषहजय	83
13. वध परीषहजय	91
14. याचना परीषहजय	99
15. अलाभ परीषहजय	99
16. रोग परीषहजय	99
17. तृणस्पर्श परीषहजय	108
18. मल परीषहजय	112
19. सत्कार-पुरस्कार परीषहजय	117
20. प्रज्ञा परीषहजय	122
21. अज्ञान परीषहजय	129
22. अदर्शन परीषहजय	139

☙ प्राप्ति स्थान ☙

१. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-४२२ ४०१

३. तीर्थधाम मंगलायतन, पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)

५. श्री रमेशचंद जैन, जयपुर मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४२ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

इसमें कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत २२ परीषहों का सामान्य परिचय तो दिया ही गया है, साथ ही प्रत्येक परीषह पर एक काल्पनिक चर्चा के रूप में परीषहजयी मुनिराज परीषहों पर कैसे विजय प्राप्त करते हैं – यह परस्पर संवाद के माध्यम से कथानक के रूप में सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

संवादों का लेखन कार्य पण्डित रमेशचन्द शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम उनके आभारी हैं।

सभी वर्ग के लोगों द्वारा इनका लाभ लिये जाने से इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	पं. अभय जैन शास्त्री
अध्यक्ष	**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

❀ विनम्र आदराञ्जली ❀

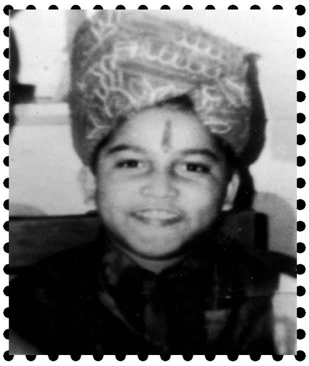

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे - ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता–अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली

स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

श्रीमती शशीबाई श्रद्धाबाई, जयपुर	5001/-
श्रीमती शुचिता बेन शोमिल शाह, मुम्बई	5001/-
श्रीमती हंसाबेन धरणीधर दमाणी, अहमदावाद	2001/-
श्रीमती रत्नमाला जैन बाकलीवाल, इन्दौर	1500/-
श्री प्रमेय-अभय जैन, दिल्ली	1100/-
श्रीमती प्रतिभा अनिलभाई, मुम्बई	1100/-
श्रीमती सरलाबाई सुदेशबहिन, देहरादून	1100/-
स्व. प्रवीणचंद मेहता, ह. ज्योति बेन पार्ला	1001/-
श्रीमती नीताबेन राजेशभाई, इन्दौर	1001/-
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, ह. श्रुति-अभय, खैरागढ़	1001/-
स्व. ब्र. जमनाबेन स्मृति ह. उमेश, महेश छाजेड़, खैरागढ़	701/-
श्रीमती शिवानी सम्यक् जैन, खैरागढ़	701/-
श्रीमती सोनम-विनय चोपड़ा, खैरागढ़	601/-
श्रीमती बरखा मनोज टाटिया, ह. अभय, आर्यिका, खैरागढ़	501/-
स्व. श्रीमती कंचनबाई ह. श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती कंचनबाई-पन्नालाल जैन गिड़िया, खैरागढ़	501/-
श्री सुनील जैन, इन्दौर	501/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़	501/-
ढ़ेलाबाई चैरीटेवल ट्रस्ट ह. श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़	501/-
झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़	501/-
श्रीमती हर्षा बेन हंसमुख भाई धोकलिया, बोरीबली	301/-
चि. मर्मज्ञ ह. श्रीमती पूजा साकेत शास्त्री, जयपुर	201/-

कल्याण का मार्ग आत्मा के आश्रय से शुरू होता है और सबका आत्मा उनके स्वयं के ही पास है, बस परिणति को परसन्मुखता छोड़कर स्वसन्मुख होना है। वास्तव में बाहर की देह बाधक नहीं बनती, बल्कि देहबुद्धि ही बाधक होती है। – इसी कृति से साभार, पृष्ठ-11

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।